गढ़वाली साहित्य की भूमिका

प्रबन्ध-सम्पादक :

हरिदत्त भट्ट एम० ए०,

शास्त्री, साहित्यालंकार,

गढ़वाली साहित्य की भूमिका - -

सम्पादक :
दामोदरप्रसाद थपलियाल
साहित्याचार्य
श्याम चन्द नेगी
बी० ए० जे डी०

प्रकाशक :
गढ़वाली जन साहित्य परिषद

पैलो संस्करण १०००] २६ जनवरी १६५४ [मूल्य १) रु०

भूमिका

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'

अथर्ववेद का ये मन्त्र की व्याख्या आज होणो छ। आज हर मनखी का विश्वास मा ईं बात की जोरदार इच्छा जोर मारणी छ कि, ईं धरती का आंगण मा खेलण को सबू को समान अधिकार छ, वो वीं प्रवृत्ति को घोर विरोधी छ, जु ईं समान अधिकार वाली बात तैं कुचलीक एका का आदर्श का पर्दा का पिछाड़ि साम्राज्यवादी मनोवृत्ति की पूरी होण की इच्छा रखदऽन।

इनी उल्टी कुचालों को पसारो जिम्मी वटी भाषा-विचार तलक छ। समय का दांव-पेचों का साथ ऊँका सुर अलग-अलग गूंजदा रन्दऽन। वो कवीत बराबरी को गित्ता गैक जिम्मी का अलग-अलग टुकड़ों तैं मिलाण की कोशिस करदऽन, त क्वी ऊं टुकड़ों तैं मिलाण कू भाषा को एका को जागर लगौंदन।

पर, ऊं की यूं गल्लदरी बत्थू से आज को मनखी सावधान छ। दुन्यां का अगनै बड्यां देशू न यूं बत्थू तैं फटकारे-दुत्कारे छ। अर ये ही सारा पर नया राजू को निरमाण नई भाषों की विरधी अर नया विचारों को जनम होणू छ। कै तैं क्या हक छ, जु क्वी कै की जिम्मी भाषा-विचारों का साथ लुकाचोरी करो?

'हर भाषा, बोली तैं अगनैं बढ़ण को पूरो-पूरो हक छ' यदि सची ये मौलिक अधिकार तैं हम मानदा छां त वे तैं अगनै बढ़ाण को क्या करणा छां? ये को जवाब कुछ नी छ!!! खाली ग्वेर-गीत, खाली नाच-गाणों का इकट्ठा करण का सारा एक सीदी-सादी जमात तैं धोखा देणो हमारो काम रई गये। जैं बोली या भाषा का नाच-

गीतों तैं हम इतनो ऊँची ठौ देंदवां, ये की भाषा तैं फेर किलै नि देंदा ? जवाब मिलदा—सब फजूल छ।

ईं फुएड-फूक दशा को मुकाबलो को करलो ? वी जु 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्याः' पर अटल विश्वास रखदऽन। ऊं तैं हटीक ये को मुकाबलो करणो होलो।

गढ़वाली जन साहित्य परिषद् ऊं ही भूमि का नौन्यालु को संगठन छ। १९३९ सन् मा ईं को जनम होई छयो। आज ईं का ही प्रयत्नू को यो परिणाम छ कि, गढ़वाल लो समझदार मनखी समझण बैठी गये कि गढ़वाली भाषा की आवश्यकता किलै छ !

एक बात हौर ! क्रिया कारक मा जु भिन्नता गढ़वाली मा मिलदे, वां का वास्ता एक उपसमिति विचार करणी छ। अतः ईं पोथी मा अलग-अलग रूप मिलला। उपसमिति की रिपोर्ट पर विचार करीक ही एक रूप सामणे लै सकला। पर, हम तैं यो नि भूल्यूं चैंद कि, व्याकरण की एकता व्याकरण से नी आंदी, वा त भाषा का विकास का साथ चलदा।

ये ३९वां प्रकाशन मा आप तैं भौत सी भूल मिलली, पर भूल कैसे नी होंदी ? भूल तैं समझणो ही सब से बड़ी शुद्धि छ।

अच्छुत !

१४ क्रॉस रोड
देहरादून।
२६ जनवरी १९५४

दामोदर प्रसाद थपलियाल

गढ़वाली साहित्य की भूमिका

गढ़वाली साहित्य अर कला

(लेखक—आचार्य गोपेश्वर कोठियाल)

देशरत्न महापुरुषों, कर्मठ कार्य-कर्त्ताओं तथा त्यागपरायण जनता का अटूट प्रयत्नों से आज हम स्वतन्त्र छां अर आज भारती गणतन्त्र का नागरिक का नाता से प्रत्येक तई अपणी सांस्कृतिक, सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक उन्नति करण कु स्वतन्त्र छां।

हमारा ये विशाल देश मा जलवायु, रीत-रिवाज की विभिन्नता का कारण भाषा, बोली अर विचार व्यक्त करण का विविध रूप होणा आवश्यक छन, यूं ही कारणों से हमारा ये महान् राष्ट्र का अन्तर्गत अनेक जनपद छन अर ऊँकी भाषा, बोली, संस्कृति मा अन्तर-जनपदीन सम्बन्ध की एकता का साथ हो साथ कुछ विभिन्नता भी छन जो देश-काल का अनन्त प्रभाव होण पर भी अक्षुण्ण ही बणी रहली। हमारा संविधान मां जनपदीय भषाओं की उन्नति का वास्ता विशेष प्रोत्साहन को निर्देशन किया गये। दुनिया मां कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नि करि सकदो जब तक वे राष्ट्र का प्रत्येक अंग तैं पुष्ट होण को पर्याप्त अवसर नी मिल्यो। देश का कै भी जनपद की उन्नति वैकी स्थानीय संस्कृति, भाषा, बोली अर साहित्य आदि की वृद्धि पर निर्भर होंदी।

हमारा यै महान् देश को एक अङ्ग गढ़वाल भी छ ज्ये मां जिला गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल अर देहरादून का जिला सम्मिलित छन। यो हमारो एक जनपद छ अर यूं तीनों जिलों की संस्कृति, सम्बन्ध अर भाषा एक छ। यद्यपि देहरादून का कुछ गांवों मां विशेषकर पछवादून का कुछ हिस्सों मां हमारी जनपदीय भाषा को व्यवहार कम होंदो, फिर भी अन्य बातों मां हम मां समानता छ। जनपदों की सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक अर राजनैतिक जागृति का वास्ता बहुत प्राचीनकाल से प्रयत्न होंदा रयेन अर ज्यों जनपद का लोग यीं दिशा मां विशेष प्रयत्न करे ऊँको सांस्कृतिक चेतना, भाव-प्रवणता तथा कलात्मक प्रतिभा मा यथेष्ट वृद्धि होय। हमारा देश मां भी ईं दिशा मा कुछ प्रयास होंदो रहे। परिणामःस्वरूप गढ़वाल मां भी कला अर साहित्य सृजन मां कुछ कार्य होये जां मे हमारा सांस्कृतिक जीवन को आभास मिलदो। कला और साहित्य को संक्षिप्त सिंहावलोकन करनो ये स्थान पर असंगत नि होलो।

कला

कला का सृजन की प्रमाणिक तिथि सन् १६५८ से आरम्भ होंदी, जब औरंगजेब का भतीजा दारा का पुत्र सुलेमान सिकोह का साथ द्वी चित्रकार श्री शामदास और हरदास गढ़नरेश पृथिपतिशाह (१६४० से १६६०) का दरबार मा आयेन। वास्तव मां चित्रकला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला यां से पूर्व प्रामाणिक रूप मां सिवाय मन्दिरों और मूर्तियों का अतिरिक्त और कुछ नि मिलद, जो लगभग १३वीं सदी तक की छ।

श्री मोलाराम न लिखे कि ऊँका गुरु ऊँका पिता श्री मंगतराम छया। मंगतराम का पिता हीरालाल अर हीरालाल का पिता हरदास

दिल्ली से आईछया। यां से यो सिद्ध होंदो कि मोलाराम तक दिल्ली मे आदा चित्रकारों की परम्परा कायम रहे।

मोलाराम और ऊँकी चित्रकला को स्थान ऐतिहासिक दृष्टि से अद्वितीय छ। या कला गढ़वाल स्कूल का नाम से विख्यात् छ। गढ़वाली चित्रकला २०० वर्ष तक उन्नत अवस्था मा रहे, और १८वीं शताब्दी मां तो विशेष उन्नत अवस्था मा छई। किन्तु बाद मां ह्रास होण लगे। मोलाराम की चित्रकला की प्रशंसा मां एक अंग्रेज लेखक श्री जे० सी० फ्रेंच न अपणी हिमालयन आर्ट नामक पुस्तक मा लिखे कि मोलाराम पहाड़ी (गढ़वाली) चित्रकला का आदर्श चित्रकार छ। यूं चित्रों से भारतीय संस्कृतिक और वे समय की चित्रकला पद्धति भी प्रगति पूर्ण रूप मा पाया जांद। कुछ समीक्षकू की राय मां गढ़वाली चित्रकला अन्य राजपूत शैलियों से भी श्रेष्ठ छ। गढ़वाल का चित्र बहुत बड़ी संख्या मां देश-विदेश मां गयन, और कालान्तर मां उचित रक्षा को प्रबन्ध न होण से बहुत कुछ नष्ट भी होई गयेन। गढ़वाली चित्र कारों का चित्र अल्मोड़ा, सिमला कि रियासतों, पटना, कलकत्ता बनारस तथा बोस्टन म्यूजियम, (अमेरिका) तथा विक्टोरिया एलबर्ट संग्रहालय (लंदन) मां गयन। बहुत कुछ चित्र महाराज टिहरी, श्री मुकन्दीलाल बेरिष्टर तथा अन्य कलाप्रेमी सज्जनों का पास भी संग्रहीत छन।

किन्तु दुर्भाग्य से मोलाराम की मृत्यु (सन् १८३३) का बाद गढ़वाली चित्रकला को ह्रास होंदो गये। श्री मोलाराम का पुत्र ज्वालाराम और शिवराम भी चित्र निर्माण करदा रहेन। चैतू और माणकू अच्छा चित्रकार होयेन, लेकिन दुर्भाग्यवश यूं कलाकारू की कला को अधिक विकास नि ह्वै सके। आजकल भी बहुत सा गढ़वाली चित्रकार छन, परन्तु ऊँकी चित्रकला मां गढ़वाल की

छाप दृष्टिगोचर नि होंदी। श्री भोला जी, श्री बहुखण्डी जी, श्री नौटियाल का नाम आजकल का गढ़वाली चित्रकारू मां उल्लेखनीय छन।

नृत्य और वाद्य

गढ़वाल का कलात्मक जीवन मां नृत्य और वाद्य को विशेष स्थान छ।

गढ़वाली नृत्य का अल्परूप ताण्डव और लास्य देखण मां औंदन। पाण्डव नृत्य, नरसिंह, निरंकार और भड़ नृत्य आदि तांडव का रूप छन। वीर गाथाओं का गान का साथ होण वाला नृत्य आल्हा सदृश नृत्यों का समान छन।

जागर नृत्यों मां लास्य की श्रेणी मा औण वाला कोमल नृत्य भी मिलदन यूं नृत्यों को प्रयोग प्रायः स्त्रीयों द्वारा ही होन्द जो रुकमणी नृत्य और मान्तरी, आछरी नृत्य को रूप छ। यूं नृत्यों मां जागरी राधाकृष्ण संबंधी पौराणिक कथा वार्ता, संगीत और वाद्य का साथ सुणोंद।

यै लास्य नृत्य का अन्तर्गत वाद्यों (वेटा) को नाच भी सम्मिलित छ जो साधारण जनता का मनोरंजन का वास्ता प्रदर्शित किया जांदो। यै नृत्य मा कोमल अंग-विन्यास, भाव-भंगी, मुद्राप्रदर्शन और कटि संचालन को प्रदर्शन, कत्थक नृत्य का समान होंद। गढ़वाली नृत्यों का सबसे अधिक प्रचलित लोकप्रिय नृत्य थड़्या छ। यै मा स्त्री-पुरुष टोली बणैक तैं नाचदन और गीत तथा वाद्य भी साथ साथ चलदना थड़्यागीत वसंत पञ्चमी से आरम्भ होंदन और वैशाख संक्राति तक चलदन। यूं गीत-नृत्यों मां हास्य, करुणा और शृंगार रस की प्रधानता रहदें, और प्रत्येक गीत व नृत्य एक लोककथा पर अवलम्बित होंद।

थड़्यागीत का ये नृत्य द्वी प्रकार का छन। एक मा त हाथ मिलैक टोलियों मां नाचदन अर दूसरो चौंफालो जो गीत का साथ हाथ से ताल दीक नाच्य जांद।

ढोल सागर का आधार पर सरांव नाच ढोल-दमाऊँ मां चलद। यूं नृत्यों का अतिरिक्त होली नृत्य, यात्रा नृत्य, चौसरा नृत्य आदि छन, जोकि ऋतु विशेष पर दिखाया जांदन।

वाद्य

गढ़वाल का वाद्य नृत्य से ही सम्बन्धित छन। नृत्य तथा वाद्य को अभिन्न सम्बन्ध छ। यूं वाद्यों मा तुरी, सिणाई, ढोल-दमाऊँ, हुड़की, डौंरू-थाली, ढोलक आदि छन जो नृत्यों का साथ-साथ चलदान। आजकल त सभी प्रकार का आधुनिक वाद्य गढ़वाल मां प्रचलित होई गयेन। यां को नतीजा यो होये कि आम लोगू की रुचि पुराण वाद्यों की ओर अधिक नि रये। लेकिन अन्तर्वर्त्ती भाग मां यूं को प्रचलन आज भी रुचि और आकर्षण को केन्द्र छ।

साहित्य

गढ़वाली साहित्य-लोकगीत, लोकगाथा, काव्य और समालोचना —यूं द्वी भागों मां ही मिलद। मध्य-कालीन युग की प्रवृत्ति का अनुसार लोग कविता की रचना ही काव्य की रचना समझदा छया। अतएव गढ़वाली साहित्य मां भी कविता ही प्रमुख रूप मा मिलदन। महाकाव्य या खण्डकाव्य का रूप की गढ़वाली भाषा मा प्राचीन काल मां कोई काव्य रचना नि होई। प्राचीन गढ़वाली कविता मुक्तक का रूप मां ही मिलदन।

यद्यपि गढ़वाली मां कविता की रचना १५वीं शताब्दि से होण लग गई छई। किन्तु दुर्भाग्य से यांको कोई ऐतिहासिक प्रमाण अभी

तक उपलब्ध नि होये । १९वीं शताब्दि का आरम्भ से गढ़वाली मां रचीं कविता उपलब्ध छन । गढ़वाली कवितावली मां सन् १८७० तथा वां से भी पूर्व की कविताओं से लेक सन् १९३० तक की कविताओं को संग्रह छ ।

गढ़वाली साहित्य को दूसरो अङ्ग समालोचना छ । गढ़वाली साहित्य मां समालोचना को आरम्भ सन् १९०६ से होये । ये सम्बन्ध मां सर्व प्रथम लेख पं० चन्द्रमोहन रतूड़ी को (गढ़वाली) का जनवरी सन् १९०६ का अङ्क मां प्रकाशित होई छयो । श्री रतूड़ी जी गढ़वाली भाषा और साहित्य तैं वही महत्व देंदा छया जो कि एक अङ्गरेज अपणी अङ्गरेजी भाषा तैं देंदो । वो गढ़वाली कविता का अत्यन्त पक्ष-पाती था । ऊंकी राय थै कि यदि गढ़वाली उन्नति करनो चान्दन तो गढ़वाली कविता और साहित्य की उन्नति करनी आवश्यक छ । ऊंका विचार से भाषा की उन्नति का द्वारा ही हमारा साहित्य और संस्कृति की उन्नति सम्भव छ । यां का अनन्तर वे समय का प्रमुख साहित्य पारखी श्री आत्माराम गैरोला; श्री सत्यशरण रतूड़ी, श्री महेशानन्द नौटियाल, श्री गिरिजादत्त नैथानी आदि न समालोचना-त्मक निबन्ध लिखीक गढ़वाली साहित्य तैं उन्नत की प्रेरणा दिने ।

कुछ लेखकु न भिन्न-भिन्न गढ़वाली कविताओं पर स्वतन्त्र रूप से समालोचना करेन जो कुछ प्रकाशित छन और कुछ अप्रकाशित पड़ीं छन । यां को कुछ संग्रह श्री विश्वम्भरदत्त चन्दोला का पास छ ।

लोकगीत और लोकगाथा गढ़वाल मां प्रचुर मात्रा मा पाया जांदन। यूं गीतू को निर्माण प्रायः स्त्री जाति का कोमल हृदय द्वारा समय-समय पर जुदाई मृत्यु आदि से प्रभावित होण का कारण होंदो रयो । यूं करुणा रस प्रधान गीतू मान झुमेलो, मांगल

आदि छन। यां का अलावा दुर्गा, गणेश, विष्णु, शिव आदि की स्तुति का वास्ता भी यूं लोकगीतू को निर्माण होये। चैत का गीत और पण्डों का गीत भी प्रचलित छन।

पवांड़ा भी गढ़वाल मा अधिक प्रसिद्ध छन। यूं पवांड़ों मा भड़ू की वीरता पूर्ण गाथा को क्रमबद्ध वर्णन मिलद। ये गाथा भिन्न-भिन्न रूप मा पाया जांदन। किन्तु दुर्भाग्य की बात छ कि यूं को अभी तक कुछ प्रामाणिक संग्रह नि होई सक्यो।

सन् १६०६ मा गढ़वाली पत्र द्वारा हमारी भाषा का आन्दोलन तैं बल मिले और फलस्वरूप गढ़वाली मां साहित्य सृजन होण लगे। तत्कालीन गढ़वाली साहित्य हमारी भाषा का साहित्य मां एक अमूल्य निधि छ। ये काल का साहित्य की प्रशंसा पिछला वर्ष कर्मभूमि का कुछ अंकों मां श्री पहाड़ी जीन मुक्तकण्ठ से करे, जेसे मैं समझदों हमारा पाठकवृन्द परिचित ही होला। किन्तु श्री चन्द्रमोहन रतूड़ी का निधन का बाद ये आन्दोलन तैं बड़ो धक्का लगे और गढ़वाली भाषा मां जो साहित्य निर्माण होई रहे थौ वे की गति अवरुद्ध सी ह्वैगे। किन्तु धारा कई न कई रूप मां प्रवाहित होंदी ही रहे। अगनई चलोक सहृदर्द आदि की रचना यीं धारा तैं बल देंदी रहन। साथ ही साथ ये मध्यवर्ती काल मां लोकगीतू को पर्याप्त सृजन होंदो रह।

सन् १६३६ मां गढ़वाली साहित्य कुटीर को जन्म होयं। यां का प्रवर्त्तक प्रो० भगवतीप्रसाद पांथरी छन। आपन जनचेतना तैं जागृत करन का वास्ता बहुत बड़ो आन्दोलन चलाये। कुछ वर्षों का भीतर कुटीरन गढ़वाल का जन-साधारण तैं ही नि अपितु अन्य भाषाओं का मानसपुत्रां का दिल और दिमाग मां भी खलबली पैदा कर दिन। ये साहित्य की प्रशंसा श्री सम्पूर्णानन्द और श्री राहुल

जीन भी करे। किन्तु सन् १६४२ का आन्दोलन कारण का कुटीर को कार्य अवरुद्ध ह्वै गे। क्योंकि लगभग सभी कार्यकर्ता जेलों में बन्द ह्वै गये छया।

सन् १६४४ मां श्री दामोदरप्रसाद थपलियाल और ऊँका साथियों न गढ़वाली साहित्य परिषद् को निर्माण देहरादून मां करे। लोकगीत, लोककथा-वार्त्ता और साहित्य निर्माण को कार्य परिषद् न प्रारम्भ करे। सन् १६४६ मां 'फ्योंली' नामक पत्रिका प्रकाशित किया गये। किन्तु आर्थिक कठिनाइयों का कारण यै कार्य मां कुछ विशेष प्रगति नि होई और पत्रिका तैं बन्द करनो पड़े। लोकगीत और लोककथाओं को निर्माण भी रुकि गये। उथैं कुटीर को कार्य भी कुछ शिथिल सी चल रहे छयो। फलःस्वरूप सन् १६४७ मां दुइ संस्थाओं को एकीकरण कर दिया गये और गढ़वाली जन साहित्य परिषद् का नाम से संस्था नया उत्साह से कार्य करन लगे। यूं पांच वर्षों का बीच मां ग० ज० साहित्य परिषद् का सृजन तैं बहुत बल मिले और गढ़वाली साहित्य का सृजन मां अभिवृद्धि होये। कुटीर से लीक आज तक गढ़वाली जन साहित्य परिषद् न लगभग ३८ रचना प्रकाशित करेन।

अब भी परिषद् का पास लिखित तथा संग्रहीत साहित्य पर्याप्त रूप मां मौजूद छ। किन्तु अर्थाभाव का कारण प्रकाशन मां विलम्ब होणू छ। मैं आशा करदौं कि सभी उत्साही व्यक्ति यै कार्य मां परिषद् को हाथ बंटाला।

आज या हमारा वास्ता अत्यन्त ही हर्ष की बात होली कि हम एक जनपद का लोग एक मात्र साहित्यिक संस्था गढ़वाली जन साहित्य परिषद् की वृद्धि का वास्ता कार्य करला। हम तैं बिना भेदभाव का अपणा जनपदीय साहित्य की श्री वृद्धि का वास्ता एक मत ह्वैक जुट

जायू ं चैंदो। प्रत्येक जनपद का उत्कर्ष से ही राष्ट्र को उत्कर्ष सम्भव छ। किन्तु जनपद का उत्कर्ष को यो तात्पर्य नि छ कि हमारा अन्दर एकाङ्गिता आवो या हम राष्ट्र का अन्य उत्थान का कार्यां मां बाधक सिद्ध होवां। यो ध्यान रहो कि जनपद का उत्कर्ष का साथ ही साथ सम्पूर्ण राष्ट्र का हित तैं भी हम मध्ये नजर रखां। राष्ट्र हित ही हमारो मुख्य उद्देश्य होयू ं चैंद।

कभी-कभी हमारा सम्मुख कुछ पेचीदा प्रश्न भी उठ खड़ा होंदन और कुछ विचारकों तैं या भी आशंका होण लगदं कि गढ़वाली आदि जनपदीय भाषा मा निर्माण होण मे हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी का बास्ता विघ्न या कुछ अड़चन पैदा करन वाली ह्वै सकदे। कुछ को विचार छ कि गढ़वाली भाषा का सृजन का बजाय हिन्दी की अभिवृद्धि ही किलै न किया जावा। ये तरह का और भी प्रश्न हमारा सम्मुख उपस्थित होंदन। किन्तु यह बात मैं पहले ही स्पष्ट कर चुक्यों कि जनपदीय भाषा और संस्कृति की वृद्धि से ही राष्ट्र की वृद्धि ह्वै सकदे और राष्ट्र हित और राष्ट्रीय भाषा का हित तैं ही प्रधान उद्देश्य बणैक हमु तैं जनपद और जनपदीय साहित्य की उन्नति करनी चैंदे। जनपदीय भाषा का साहित्य सृजन को हमारो उद्देश्य केवल जनपदीय साहित्य तैं प्रकाश मा लौंण को छ और लोकगीत लोक-कथावर्ता आदि का संग्रह से राष्ट्रभाषा की भी वृद्धि करनो प्रधान लक्ष्य छ। किन्तु साथ ही मौलिक रचनाओं त प्रोत्साहित करनो भी हमारो कर्त्तव्य छ। ये मौलिक रचनायें गढ़वाली मां होवन या हिन्दी मा। हमारो प्रधान उद्देश्य साहित्य स्रष्टाओं तैं प्रोत्साहित करनो छ। यह आशंका सर्वथा निराधार छ कि गढ़वाली साहित्य सृजन मे हिन्दी साहित्य सृजन की गति मा शिथिलता उत्पन्न करनी और विघ्न पैदा करनो छ। मैं ये तरह का तर्क से सहमत नि छौं कि

गढ़वाली का मौलिक साहित्य का सृजन मां अपणी शक्ति क्षीण नि करीक हमतैं हिन्दी साहित्य की ही वृद्धि करीचैंदे। साहित्य त जैं भाषा मा निर्मित होलो वो विश्व साहित्य को ही अंग छ और विश्व साहित्य ही की वृद्धि मा एक महान योग तथा देण छ। यां का वास्ता विश्वकवि रवीन्द्रनाथ को साहित्य हमारा सामणे एक ज्वलन्त उदाहरण छ, ऊँकी गीतांजलि जनपदीय भाषा मा लिख्या गई छै। क्या गीतांजलि या विश्वकवि रवीन्द्रनाथ बंगला साहित्य सृजन विश्व साहित्य सृजन नि छ? अतः यह तर्क सर्वथा निराधार छ कि गढ़वाली साहित्य सृजन से कुमार साहित्य स्रष्टाओं की शक्ति व्यर्थ क्षीण होली। यदि हमारा अन्दर महानता छ और साहित्य सृजन की वास्तविक शक्ति छ त हम कईं भी भाषा का साहित्य निर्माण करां वह प्रकाश मा अवश्य ही आलो, यो मेरो दृढ़ विश्वास छ*।

---

*गढ़वाली जन-साहित्य परिषद् का देहरादून मा सभापति पद से दिया गये भाषण।

गढ़वाली कविता की त्रिमूर्ति

[श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला, एम० ए०]

कविता को विषय बड़ो ही गूढ़ और अनन्त छ। मनुष्य का हृदय मा कविता की धारा अनादि काल से प्रवाहित होंदी औणीं छ। जनो-जनो मनुष्य की संस्कृति को समुद्भव तथा साथ ही जनो-जनो वे का अन्तर-जीवन और अन्तःवृत्तियों को विकास होंदो गये, तनो-तनो ही वे का मानस की काव्य-धारा भी उज्ज्वल और निर्मल होंदी गये। मनुष्य की सांस्कृतिक उन्नति का साथ-साथ वे की भाषा को भी विकास होए और वे का हृदय का बरीक से बरीक भावों को प्रकटीकरण भी सरल होंदो गए। जब वो अपणी भाषा का प्रारम्भिक विकास की अवस्था मा अपणा हृदय का मोटा-मोटा और साधारण ही भावों तईं और वो भी बहुत अस्पष्ट रूप मा, व्यक्त कर सकदो छयो, वख अब वे का सांस्कृतिक उत्कर्ष का फलस्वरूप भाव का प्रमुख वाहन भाषा का सुविकास की अवस्था मां, वो अपणा मन का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावों तईं व्यक्त करन मा समर्थ होई गए। संसार की सभी विकसित भाषाओं का इतिहास मा उपरोक्त अनिवार्य अवस्था को परिचय मिलद।

ग्राम-गीत तथा ग्राम-कथा आदि हमारा वे सांस्कृतिक बचपन का स्मारक-स्वरूप छन, जब कि भाषा को समुचित विकास नी होई सके छयो—जब मनुष्य का मन मा भावों का मिट्ठा-मिट्ठा फूल खिलदा छया, पर भाषा को उपयुक्त वाहन न होण का कारण वो अपणा सौन्दर्य तईं यथेष्ट मात्रा मा प्रकट नी कर सकदा छया और

ऊँकी मिठास गूंगा को गुड़ बणीक अपणा उद्गम स्थान मा ही मूक पड़ी रांदी छई।

[२]

हमारा गढ़वाल का हृदय-कुसुमों मा भी या मिठास विद्यमान छई, परन्तु भाषा को अनुपयुक्त विकास वे का पूर्ण प्रकटीकरण का मार्ग मा रोड़ा अटकौणों छयो। भाषा की दरिद्रता भाव की अभिव्यक्ति मा बाधक बणी छई। सन् १६०५ ई० मा 'गढ़वाली' सम्वाद्पत्र का प्रकाशन का साथ ही गढ़वाली हृदय का भावों और विचारों मा एक क्रान्ति-सी मच गये। ऊँ तई अपणा आप तई व्यक्त करन को मौका मिले। उच्च शिक्षा प्राप्त प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति भी अब अपणी मातृ-भाषा गढ़वाली मा अपणा भावों तई प्रकट करन लग गयेन। भावों तई पूर्ण स्वरूप एवं पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करन का वास्ता संस्कृत तथा हिन्दी शब्द और छंदों को प्रयोग किया जाण लगे। ग्राम-गीत तथा साधारण बोलचाल की वा अर्धविकसित भाषा अब एक अच्छी विकसित साहित्यिक भाषा को रूप ग्रहण करन लगीगे। ई विकासोन्मुख भाषा का अंचल मा उच्च विचारों से रंजित कविता की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित ह्वै चले। मई सन् १६०५ ई० मा जब गढ़वाली पत्र को जन्म होए त वे का प्रथम ही अंक मा गढ़वाल का जातीय-कवि श्री सत्यशरण जी रतूड़ी की "उठा गढ़वालियों" शीर्षक युग-परिवर्त्तनकारी कविता प्रकाशित होए। यख मा कवि न गम्भीर स्वर मा यो अमर-मंत्र उद्घोषित करे।

'स्वदेशी गीत कू एकदम गुँजावा स्वर्ग तैं भायों,
भला हौंरू कसालू की कभी तुम कू कमी नी छ।
बजावा ढोल रणसिंघा, सजावा थौल कू सारा
दिखावा देश-वीरत्त्व भरी पूरी सभा बीच।

उठाला देश का देवतौं सणी, बांका भड़ कू भी,
पुकार जोर से भायों घणा मंडाण का बीच,

आज इनो लगणों छ कि कवि की यही पुकार गढ़वाल की अनेकमुखी जाग्रति की जागरण भेरी प्रमाणित होणी छ। हमारी भारती का वे गयाबीत्यां जमाना मा भी जबकि स्वयं हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी ही अंधकार मा पड़ीं छई, जब कि वीं मा आज की जनी आभा नी आए छई, गढ़वाली भाषा सुन्दर स्निग्ध काव्य-ज्योत्स्ना से ज्योतित होण लग गए छई। (यख मा हमारो मतलब खड़ीबोली हिन्दी से छ, अवधी और ब्रजभाषा से नी, जो कि द्वी ही हिन्दी साहित्य का भक्ति काल यां उन्नति को चरम सीमा तक पौंछी गए छई)। गढ़वाली की आत्मा मा तभी से जाग्रति तथा प्रगति को भाव औण लग गए छयो। "स्वदेशी-गीत कू एकदम गुंजावा स्वर्ग तैं भायौं"—कवि की या पुकार गढ़वाल का कोणा २ और कन्दरा २ मां गूंजण लगे और मैं समझादौं कि तभी से गढ़वाली कविता की क्रमबद्ध उन्नति को श्री गणेश होए।

ई नवीन साहित्यिक जागृति को श्रेय बहुत कुछ 'गढ़वाली' पत्र तईं छ। यथार्थ मा जो काम आचार्य द्विवेदी जी तथा 'सरस्वती' पत्रिका न खड़ीबोली हिन्दी तथा आधुनिक काल का हिन्दी साहित्य का वास्ता करे, ठीक वी काम 'गढ़वाली' पत्र तथा वे का सम्पादकों न गढ़वाली कविता की उन्नति का वास्ता करे। आचार्य द्विवेदी जी न 'सरस्वती' का द्वारा हिन्दी की गद्य-शैली को परिमार्जन करे और वे को स्वरूप स्थिर करे तथा कवियों तईं शुद्ध परिमार्जित खड़ी बोली मा कविता करन की प्रेरणा दिने। पत्रकार-जगत की आवश्यकताओं न द्विवेदी जी तईं भाषा की एक नवीन शैली का निर्माण की आवश्यकता को अनुभव कराये। यां से कालान्तर मा द्विवेदी जी का हाथों से

आधुनिक हिन्दी तईं स्थिरता एवं शक्ति प्राप्त होग। इन्ने ही 'गढ़वाली' पत्रन जख गढ़वाल मा शुद्ध परिमार्जित हिन्दी को प्रचार करे वखी प्रतिभासम्पन्न गढ़वालियों तईं गढ़वाली मा कविता करन की प्रेरणा भी दिने। फलस्वरूप श्री सत्यशरण रतूड़ी, जो स्वयं हिन्दी का वे आरम्भिक युग का इण्या-गिण्या श्रेष्ठ कवियों मा यथेष्ट सम्मानित तथा प्रतिष्ठित छया और ज्यूं की कविता 'सरस्वती' मा प्रायः छपा करदी छई, अब बड़ा मनोयोग का साथ गढ़वाली मा भी कविता लिखण लगेन। श्री चन्द्रमोहनजी रतूड़ी जो स्वयं अंग्रेजी, सस्कृत तथा हिन्दी का मर्मज्ञ विद्वान तथा गम्भीर दार्शनिक विचारक छया, अब गढ़वाली मा ही कविता लिखण लगेन। वो अगर चांदा त गढ़वाली की अपेक्षा उपरोक्त तिन्ने समृद्ध भाषाओं मा कविता कर सकदा छया, किन्तु ऊं को मत छयो कि गढ़वाली कवियों तईं गढ़वाली भाषा मा ही कविता लिखी चैंद, किलैकि जो रस और मधुरता मातृ-भाषा मा छ वा अन्यत्र दुर्लभ ही होंद।

(३)

गढ़वाली कविता तईं सुरुचि, सुसंस्कार तथा सौंदर्य का हाथों से सँवारन वाला तीन प्रमुख कवियों को नाम गढ़वाली कविता की त्रिमूर्ति का समान उल्लेखनीय छ। ईं त्रिमूर्ति मा छन—श्रीसत्यशरण जी रतूड़ी श्री चन्द्रमोहन जी रतूड़ी और श्री आत्मारामजी गैरोला। यूं का अतिरिक्त सर्वश्री देवेन्द्रदत्त रतूड़ी, तारादत्त गैरोला, गिरिजा दत्त नैथाणी, सुरदत्त सकलानी, दयानन्द बहुगुणा आदि कतना ही कवियों न गढ़वाली कविता का ये आरम्भिक निर्माण मा सराहनीय उद्योग करे।

जनो कि मैं पैले बोली चुक्यौं, श्री सत्यशरण जी अपणा समय का श्रेष्ठ हिन्दी कवियों मा एक छया। सम्भवतः ये ही कारण श्री

राम नरेश त्रिपाठी तईं अपणी 'कविता-कौमुदी' नामक संग्रह-ग्रन्थ मा सत्यशरण जी की 'शान्ति मयी शैया" कविता तईं स्थान देणो पड़े छयो। हिन्दी का राष्ट्र-कवि श्री मैथिली शरण जी गुप्त तथा सत्यशरण जी न प्रायः एक ही समय कविता लिखणी आरम्भ करे छई। यूं की कविता गुप्त जी की जनी मार्जित भाषा तथा सुबोध शैली मा होंदी छई। सत्यशरण जी की 'शरद्-स्वागत' आदि कविता सन् १६०५ ई० मा 'सरस्वती' मा प्रकाशित होए छई। यां का बाद बहुत समय तक वो 'सरस्वती' मा लिखदा रहेन। 'गढ़वाली' का प्रकाशन का साथ ही ऊँ न गढ़वाली भाषा मा भी लिखणों आरम्भ करे। 'गढ़वाली' मा समय-समय पर प्रकाशित यूं की 'उठा गढ़वालियों'; 'अबला प्रकार' 'गढ़वाली सेना को युद्ध का वास्ता प्रस्थान', 'उद्बोधन' तथा 'गढ़भूमि की आरती' शीर्षक कविता भौत प्रसिद्ध छन। सत्यशरण जी की कविता को व्यापक भाव देश-प्रेम छ। गढ़वाली सैनिकों का कारण गढ़वाल को यूरोपीय महायुद्ध से विशेष सम्बन्ध होण का कारण यूं की देश-प्रेम की भावना तईं और भी अधिक प्रगति मिले। महायुद्ध का वास्ता गढ़वाली सेना का प्रस्थान पर जो कविता सत्यशरण जी न लिखे छई, वा मेरी राय मा गढ़वाली वीर-कविता की आत्मा छ। कविन सैनिकों तईं उत्साहित करन क बोले छयो :—

"गढ़वाल का सपूतों तैयार ह्वै गयैं तुम,
ऐगयैं कमर कसीक मैदान मा खुला तुम।
मायी का लाल ह्वै क पित्रू को नौं बढ़ावा,
जावा विजय मनावा बद्री-केदार की तुम,
जर्मन को ध्वंश कैद्या, बन्दूक से उड़द्या,
कुरखेत ही मचैद्या, रणशूरसिंह छैं तुम।

वाज । बजावा मारू, रणसिंह नाद, भेरी,
ढौंरू. कँसाल, घण्टा, सब थौल मा सजा तुम ।
आकाश कू गुँजैद्या, दिकपाल कू कँपैद्या,
पृथ्वी सणी हलैद्या ये काल मा सभी तुम ।"

समाजसुधार की दृष्टि से "अबलापुकार" यूं की बहुत श्रेष्ठ कविता छ । प्रधानतया हिन्दी का कवि होण का कारण यूं की कविता की भाषा मा 'गढ़वालीपन' कम और 'हिन्दीपन' अधिक छ । यूं का विपरीत श्री चन्द्रमोहन जी तथा आत्माराम जी गैरोला मा 'गढ़वालीपन' अधिक छ ।

[४]

चन्द्रमोहन जी, मेरी राय मा गढ़वाली का सर्व श्रेष्ठ कवि छन । "गढ़वाल का सच्चा कवियों से प्रार्थना' का रूप मा यूं न कवि-कर्म का महत्त्व को जो वर्णन करे वां की छाप यूं की अन्य कविताओं मा भी स्पष्ट छ । उपरोक्त रचना को कुछ अंश यो छ :—

"क्या छन स्त्रियों का मुख-नेत्र-पद्म,
बिना हमारी प्रतिभा कि किर्णों ?
क्या वीरू का कर्म विचित्र अद्भुत
बिना हमारी फिरदारु वाणी ?
हे नी छ क्या या प्रकृति हि सारी,
निर्जीव बेढंग'र शून्य जगल,
देवत्व, सौन्दर्य, सहानुभूति—
संचारिणी शक्ति बिना हमारी ?"

कवि की ईं दिव्य शक्ति पर विश्वास का साथ ये अनेक सुन्दर कविताओं का प्रणयन मा सफल होयेन । यूं की 'देववरण को वर्णन'

'विरह वसन्त विलाप', 'गढ़वाल का सच्चा कवियों से प्रार्थना', 'मनुष्य जीवन की नीति' 'दरवानसिंह कू विक्टोरिया क्रौस' और 'टिहरी से विदा' शीर्षक कविता सभी सुन्दर छन।

चन्द्रमोहन जी की कविता उच्चकोटि का कवित्त्व से पूरित छ। प्रकृति वर्णन श्रेष्ठ छ। यूं की कुछ उपमा त बड़ी ही सुन्दर और मौलिक छन। या उपमा त गढ़वाली कविता मा सबसे अधिक सुन्दर बोले सकेंद—

'बिटुड़ि गच्छ छ फूलुन फ्योंलि की,
जनि कि आंसुन हेवुलि ब्योंलि की।"

यूं तई अपना जन्म-स्थान जोदी ग्राम (टिहरी) मे बड़ो प्रेम छयो। 'देवप्रयाग [illegible] वर्णन' शीर्षक कविता मा कवि-हृदय बोल पड़े—

मैं यीं कान्फरन्स मा एक भारी कमी लगद, जु लेखक, गायक और कलाकार अपनी वाणी से गढ़वाली जनता का सुख, दुःख और संघर्ष संणी व्यक्त करदन वूँ को प्रतिनिधित्व नी सी छ। यां को मुख्य कारण यो छ कि हमारी अपणीं गढ़वाली जनता और वूं का

वीररस का वर्णन मा भी चन्द्रमोहन न अपणो कमाल दिखायें। इनी कविताओं मा 'दरवान सिंह कू विक्टौरिया क्रौस' बहुत श्रेष्ठ छ, जां को कुछ अंश ये प्रकार छ :—

जागे न सुद्दे गढ़ तू र तू भी,
सुद्दे नी वाकी ढ़ग की सरस्वती।
सुद्दे नि औन्या गढ़ मा कव्यों तुम,
भी०सी० हि ह्वैगे दरवान सिंह ज।
प्रफुल्ल हावा गढ़ की सत्यों तुम,
सब जगत करद तुम कू नमोनम।
ज्यूं की कुल्यों मा 'गढ़वाल-रैफल'
जन्मे' र शूरो दरवान सिंह ज।

प्रसन्न हो भारत दीर्घकाल मे
वीरत्त्व तेरो चमके दुन्यां मिंजे,
धर्ती धर्थ्यां जर्मन जो उखेलेयन
तेरा ही गढ़ का दरवान सिंह न।

निःसन्देह चन्द्रमोहन जी उच्चकोटि का कवि छया। श्री तारादत्त जी गैरोला ऊं तईं अंग्रेजी कवि कीटस और शैली का समकक्ष समझदा छया।

[५]

गढ़वाली कविता मा आत्माराम जी को अपणों ही विशेष स्थान छ। ऊं की कविता पदलालित्य, मधुरता, व्यंग्य तथा देश-प्रेम से सुसज्जित छ। शैली की सरलता और भाषा को 'गढ़वालीपन' ऊं की कविता की विशेषता छ। ऊं ठेठ गढ़वाली शब्द [illegible] कवि छन। "गढ़वाल का सच्चा कवियों से प्रार्थना' का रूप मा यूं न कवि-कर्म का महत्त्व को जो वर्णन करे वां की छाप यूं की अन्य कविताओं मा भी स्पष्ट छ। उपरोक्त रचना को कुछ अंश यो छ :—

"क्या छन स्त्रियों का मुख-नेत्र-पदम,
इना दोहों पर भी 'देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर'—वाली उक्ति चरितार्थ होंद। कुछ दोहा ये छन—

तुलसी जीभ च लुतपुती, बोल बोद बिकराल,
लुकि जांद कुड़बाकबकि जुत्ता खांद कपाल।
तुलसी ईं संसार मां को सुखी को च उदास,
अनब्याही ब्यौ चांहद, ब्याही लेंद उसास।
जनम-जनम ते घिसी-घिसी टुटिन सींग अर पूछ,
तुलसी हरि का भजन बिन धिग दाड़ी धिग मूछ।

आशा छ कि हमारा नवयुवक साहित्यिक गढ़वाली कविता की ईं त्रिमूर्ति तईं समय की गति का साथ भूल नी जाला।

गढ़वाली साहित्य

(लेखक—श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी')

'गढ़वाली जन-साहित्यपरिषद्' न अपणा संगीत और कला का अधिवेशन मा शामिल होणां को जो न्यौंतो मैं संणी दिने यां का वास्ता मैं आप लोगों कू आभारी छवूँ, आप न पिछला कई वर्षों से 'गढ़वाली संस्कृति' की सेवा करणां छयाईं, आप लोगों मान कई साथियों न ये बीच 'गढ़वाली जनता' से निकट कू सम्बन्ध भी जोड़ी याले, और यूं की वांणी को प्रसार भी भैर करे, यां का वास्ता आो साथी बधाई का पात्र छन।

मैं यीं कान्फरेन्स मा एक भारी कमी लगद्, जु लेखक, गायक और कलाकार अपनी वाणी मे गढ़वाली जनता का सुख, दुःख और संघर्ष संणी व्यक्त करदन वूँ को प्रतिनिधित्व नी सी छ। यां को मुख्य कारण यो छ कि हमारी अपणीं गढ़वाली जनता और वूं का बीच का धरती का सच्चा बेटों का साथ कोई निकट को सम्बन्ध नी छ। अन्यथा हमारा बीच वू लोग भी अवश्य होंदा, जों का गीतों मा गढ़वाली किसान, डूम, सिपाही, भुलों का परिवार, कुली, रिक्शाखींचणवालों, सामन्ती गुलामी से पीड़ित हमारी दीदी भुली —यानि गढ़वाली जीवन का बीच का संघर्ष की सजीव और सुन्दर झांकी मिलदन।

हमारा वू कलाकार हमारा गढ़वाल की धरती का 'सच्चा मानव' का संघर्ष की स्वांस और गूंज हम तक पहुँचांदन। वू ही हमारा गढ़वाल समाज का उमड़दा, बहुमुखी जीवन का सप्राण चि हमारा अगणें रखदन। वूं न हमारा गढ़वाली समाज का जीवन मा

जो नयी, उजली और आशामय छ वां की पौध लगाये और यून ही अपना व्यंग से समाज और जीवन मा जु कुरूप छ, वूं बुराइयों की धज्जी भी उड़ाए।

यदि वू हमारी धरती का सच्चा कला पारखी यग्य आंदा तो हम जू कि उजला कपड़ों वाला अफू सणी बड़ा लेखक मनदां, जनता का वूं सच्चा सांस्कृतिक नेताओं का अनुभवों से बहुत कुछ सीखीक; अगणों का वास्ता अपनी कलम पैनी करदा, वूं से हम सीखदा कि अपनी धरती और अपना लोगों सणी कनों प्यार करी जांद। अपना लोगों का चरित्र की सुन्दर और बलवान तसवीर अपना साहित्य मा कना देवां और ऊंका जीवन संघर्षों से सहानुभूति करनी कना सीखां।

साहित्य और कला को इतिहास मनुष्यों का जीवन संघर्षों का बीच ही पालित पोषित होए, मानव की कथा ही वो बतलांद। पैले मनुष्य और प्रकृति का बीच संघर्ष होए, उबारे पेट भरना का वास्ता वो जानवरों की शिकार करदो छयो। उबारे सभी पुरुष स्त्री सियांई छया, वूं कू एक सामूहिक जीवन मा बड़ी कठिनाइयां हुईन। बरसात का दिनों मा जाड़ा की रात मा वू कल्पना से खोहों का भीतर प्रकृति से अपना संघर्ष की घटनाओं की तसबीर बणादा छया, जानवरों का पिछणें दौणनू, वू से मुठभेड़, नदी या समुद्र का किनरा रहण वाला माछा मारदा छया और लहरों की खिलवाड़ देखदा छया। कला कू आरम्भ ये तगों संघर्ष से ही होए और संघर्ष की तेजी का साथ ही वांमा प्रौढ़ता भी आये। आदि मानव की लहर की कल्पना ही आज तमाम कपड़ों का डिजाइनों की शुरू की रूपरेखा छ।

अपना जीवन संघर्ष का दौरान मा ही मानव न अपनो सुख

दुःख गुणगुणाणो शुरू करे और गीतों की रचना इनो कै की होए। फसल कटणा मा मिली क हंसिया चले, रुपाई होए और सामुहिक नाच की भावना यां से ही आए। मानव इतिहास संघर्षों कू इतिहास छ। मानव प्रकृति कू संघर्ष, फिर वूं की आपस की लड़ाई आज भी वो अच्छा जीवन का वास्ता निरन्तर संघर्ष करण लग्यूं छ। साहित्य और कला इतिहास की कई संघर्षमयी मञ्जिलों सणीं पार कै की निखरे। नगरों का निर्माण का साथ तत्कालिक साहित्य तथा कला सणीं सामन्तों न केन्द्रित करन की चेष्टा करे। वां मा जो सबल छयो वो त निखरे पर बाकीमा ठहराव आई गये। जै जीवन मा धरती से निकट कू सम्बन्ध नी छ, जो कि प्रकृति की छटा का साथ नी निखरद, जख कि संघर्ष करना की जड़ नी छन वख को साहित्य बासी पड़ी जांद। वो बासीपन तभी दूर होंद, जब कि दूर-दूर का जन-पदों का लेखक अपनी बोली से वे साहित्य मां स्वस्थ बयार बहावन।

आज हिन्दी की मौलिक रचनाओं मा भी एक ठहराव आई गए, वां कू कारण यो छ कि हिन्दी का लेखक शहर का कृत्रिम जीवन मा सड़ी-गली कल्पना करदन। शहर की जनता से भी वूं कू कोई सम्पर्क नी छ, वूत छोटा-छोटा कस्बों मा रहणां का आदी होई गैन। मानव जीवन की संघर्ष वाली परम्परा से वूंन नातो तोड़ी याले। हिन्दी साहित्य बलवान तभी होलू जबकि बोलियों का स्वस्थ साहित्य से वे कू नातो जुड़लू। जबकि जातियों का सांस्कृतिक जीवन की सच्ची तसवीर वांमा आली। ये वास्ता हम गढ़वाली बोलण वालों की या एक बड़ी जिम्मेदारी भी छ कि हम अपणा साहित्य सणी और बलवान बणांवा और गढ़वाली संस्कृति कू सम्बन्ध राष्ट्रभाषा हिन्दी से जोड़ां। उन्नीसवीं सदी मा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र न एक घोषणा पत्र बणाई छयो।

'जनता में नवीन प्रेरणा फैलाने के लिए ग्रामीण भाषाओं का सहारा लेना चाहिये, गीत भी ग्रामीण भाषा में लिखे जांय और गायकों से उनको गवाया जाय।'

अपना घोषणा पत्र मा भारतेन्दु बाबू न 'स्वदेशी' और देशप्रेम को सवाल रखी छयो, जो कि कई साल बाद कांग्रेस न अपनाये।

कलाकार यदि वू अपनी जनता का नजदीक रंहद त वूं की सामाजिक हलचलों और परिस्थितियों कू सही ज्ञान रखद, इना साहित्यिक जनता का काम और संघर्ष से सबक पढ़ीक अपनी कलम संणी पैना करदा, वू जनता मा घुलीमिली क वख से प्राण और प्रेरणा पांद। भारतेन्दु युग का लेखक यां से ही अपनी जनता मा प्रिय छया।

बीसवीं सदी का शुरू मा 'गढ़वाली' को जन्म भी हमारा सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं कू अपनी जनता का निकट का सम्बन्ध कू ही प्रसाद छयो। उथारे हमारा लेखकों मा एक चेतना आई छई और यदि विशालकीर्ति का अंक आप उठायन त पढ़ील्या 'पौड़ी का टाल मा लाखड़ा नी छन, दुकानों मा सड़्यूँ गल्यूं आटू छ। सरकारी जंगलों का विरोध मा भी विशालकीर्ति और गढ़वाली न बड़ी लड़ाई लड़े। विशालकीर्ति का सम्पादक कू सम्बन्ध 'गढ़वाली जनता से निकट कू छयों ये वास्ता वू गढ़वाली जनता का संघर्षों तथा आन्दोलन पर बहुत तेजी से लिखदा छयो। पुरुषार्थ भी अपनी जनता की सेवा करदू छयो। पर 'गढ़वाली' कू स्वरूप एक अच्छा साहित्य पत्र का रूप तक ही सीमित रा। यां कू कारण यो छयो कि वू अपणी धरती से दूर प्रकाशित होंदू छयो।

'विशाल कीर्ति' की लोकप्रियता का पिछणें क्या रहस्य छयो-

यां को रहस्य यो छ कि तुलसीदास आज भी क्याकू प्रिय छन, वो लिखदन :—

खेती न किसान की, भिखारी की न भीख बली,
बनिक को न बनिज, न चाकर को चाकरी।

यो चित्र अकबर बादशाह का राज कू छ। कबीर न व्यंग से अपना समय की सामाजिक बुराइयों की धज्जी उड़ाये। सन्त कवि श्रमिक जीवियों की भावना सणी व्यक्त करना मा सफल होईन। वां से ही कबीर, भरतरी, रैदास आदि सन्त कवियों का गीत आज भी चमार, कोरी, धोबी आदि जातियूं मा भक्ति और सद्भावना प्रदान करदन।

जनवादी कलाकार के भी कलाकृति कू मूल्य यीं बात से आंकद कि वू कख तक जनता का नजदीक छ, वां मा सामाजिक जीवन कितना प्रतिबिंबित होए और वा जनता की समझ मा कतना आंद। भारतेन्दु युग की एक कविता छः—

सम्वत् उनइस सौ तिरपन मा पड़ा हिन्द में महा अकाल,
घर-घर फाके होने लागे, दर-दर प्रानी फिरें बेहाल,
या विक्टोरिया राज्य की तसबीर छ,

हिन्दी साहित्य मा सन्त कवियों, भारतेन्दु, प्रेमचन्द आदि को साहित्य हमारी जनवादी सँस्कृति की स्वस्थ परम्परा छ। गढ़वाल मा पुं० सदानन्द कुकरेती तथा और वे समय का लोग वीं जनवादी संस्कृति का लड़ाकू कार्य-कर्त्ता होईन। हम जू कि सांस्कृतिक क्षेत्र का सिपाही छवां, हमारू कर्त्तव्य छ कि वीं परम्परा सणी अगनें बढ़ावां।

प्रत्येक देश की लोक संस्कृतिक की आत्मा साधारण जनता हूँद,

उ्याकि नगरों नगरों से दूर गौं, वन, पहाड़ आदि मा रहंद। गढ़वाल की जनता त गौं मा ही रहदा गढ़वाल कू इतिहास बहुत पुराण छ। हमरा किसान कू हल, बैल, खेत को पुराण नातू छ। ऊंचा-ऊंचा पहाड़ छन जख कि वू सदियों से संघर्ष करण लग्यूं छ। हमारी बोली मां लोक गीत लोकनृत्य, लोक चर्चा बहुत पुरांणी छन। गढ़वाल का किसान न संघर्षों मा तपीक. अपना खून पसीना बहाईक ही गीत पखाणा, आदि रचीन। धरती का बीच की वा उपज हमारी राष्ट्रीय इतिहास की रीड़ की हड्डी छ।

गढ़वाली किसान की बड़ी ही करुण कहानी छ। साऊकार, पटवारी, पुलिस, अफसर ये सब जौंकि वे कू खून चूसदा रहदांन, बेकारी, अकाल, भुखमरी का कारण वो अपना घर से भागीक रँगरूट बणद, परदेश मा चौकीदारों करद, चपड़ासी कू काम करद, कुलीगिरी करद, हमारा खेर छोरा व अपर मा पढ़णा वाला नौना घर की कठिनाईयों का कारण वखसे भागी क भैर भाडा चौका कीं नौकरी करना का वास्ता विवश होई जांदन। हमारा गीतों मा हमारा गायकों न हमारा जनतन्त्र गढ़वालियों की सच्ची भावना व्यक्त करे।

हमारी जाति बहुत ही चेतनाशील और सजग छ। हमारा गीतों मा ये ही कारण से गढ़वाली जीवन संणी व्यक्त करना की बहुमुखी प्रतिभा मिलद्। हमारा गीतों मा अंग्रेजी शासन का प्रति घृणा की भावना छ।

घोत्यों वाला कमौन, टोपों वाला समौन, या अंग्रेज को जादू चलदो, दूध होयो पाणी।

सन् १९४२ मा हमारा कलाकार अपणा अंग्रेजी शासन का प्रति नफरत व्यक्त करदन :—

अंग्रेजों तुम चली जावा, यख बटीक हाथ ध्वावा,

भारत अब आजा होलू.

हमारा गीतों की अपणी राष्ट्रीय-परम्परा भी छ: ।

'आज सुणां सुणां सुणां लोगो, भारत मा को गीत द ।' हमारा आजाद फौज वाला दूर ब्रह्मा मा एक स्वर से गांदन ।

'ऐगे आजादी को साल भरती होई जौंला भम ।।'

गढ़वाल की नारी को जीवन बहुत ही दुःखी छ । सामंती ढांचा का कारण वा बिक्री की वस्तु आज भी छ, ब्यो का मौका पर वीं कू भी तोल होंद, सासू कू अत्याचार; साहुकार का कर्जा का कारण पति कू कमाणा का बास्ता परदेश जाणू, परिवार मा एक नौकरानी की सी वीं की स्थिति छ । हमारा कलाकारों न वीं का प्रति सबसे अधिक सहानुभूति बरती क वीं बल देण की चेष्टा करे । हमारा पूरा साहित्य मा वीं नारी की विषाद छापमिलद, हम अपनी नारी की दासता क ऊं वेड़ियों सणी काटणों पड़लू । अब वीं को दुःख नासुर बणीक गढ़माता का हृदय मा बहुत दुखद ।

हमारी नारी न खुदेड़ होणू त प्रकृति से बरदाननसी पाए ।

'काला डांडा पीछ बाबाजि काली च कुएड़ी,

मैं यकुलि लगदी च डर ।'

या फिर—'मेरी जिकुड़ी मा कुग्ड़ी सी लौंकी ।।'

कभी वा सहूकार सणी कोसद त फिर अपना बुबा सणी जैन कि पाथा भरीक रुपया खाईं न वीं का साथ ब्यो करना कू पती न सौकार से कर्ज लिये, फिर वे चुकाणां कू परदेश नौकरी पर गये, वो कर्ज कभी नी चुकद ।

"बाबा जी को बोल्यान तुमना भलो करे, रुपया खैके मेरो बुरो

करे।' या फिर 'नाक की नथुलीन देली सौकर को व्याज' और भी 'सौकार को मरे जौंकी होण देणदारी।'

'हजारीवांद' हमारी नारी की बिक्री का प्रति कतनो तीखो व्यगं छः। सखी पन्द्रह वर्ष की होली चन्द्रभागा, अस्सी बरस को होलो दौलतराम ।

सासु क हमारी ब्वारी पर आतंक छायूं छ, हमारा कलाकारों की सहानुभूति सासु समुदाय न कभी नी पाए. गीतकारों न त ब्वारी को ही पक्ष लिने।

''गेगे सासु जेठ, जन सासु तेरी मांगी, तनू मेरो पेट।' या 'स्वामी जी मैं घर जाणकु जांदू, तेरी च बोई खराब कम। ' या फिर 'खैयालि ब्वारी, पीयालि सासु।'

हमारी सांस्कृतिक निधि मा सबसे बड़ी देन हरिजनों की छ। हमारी नृत्यों मा भी वू प्रमुख भाग लेंदन। पर हमारो वूं का प्रति अच्छू व्यवहार नी छ। हम वूं सणी छोटू समझदां। ''डूम चढ्यो, अकाल पड्यो'' वाली भावना हम तैं छोड़ देंण पड़ली।

जो साहित्य और कला लोगों सणी सक्रिय बणादन वूं मा प्राण डालिक चेतना कू सचार करू और जनता की सामूहिक शक्ति इकट्ठा के की आर्थिक तथा सामाजिक सुधार करना का वास्ता संघर्ष करना की प्रेरणा देवू वा ही सही माना मा जनता की संस्कृति छ। हमारा गढ़वाली गीतों मा हमारी जनता का सभी संघर्षों की झलक मिलद। १८५१ का अट्ठर का किसानों कू तिहाड़ का वास्ता लड़ाई लड़नू, १६२१ मा कुली उतार कू संघर्ष, १६३० रंवई मा तिलाड़ी का मैदान वालू मोर्चा आदि सभी लड़ाई, गीतों मा जनता की बहादुरी की धरोहर छन। ज्या जनवादी परम्परा हमारी छ वां की

सबसे बड़ी टक्कर 'सुमन जीं' का नेतृत्व मा टिहरी का सामन्तवाद से भिड़न्त हुई, ज्यां मा कि सामन्तवाद ताश का महल की तरों ढ़ई गयो छयो।

जब कि हमारा टिहरी का साथी वे मोर्चा पर छया त वूंन वीं लड़ाई की तेजी का वास्ता अपनी कलम पैनी करी छई और गीतों, एकांकी नाटकों से अपनी जनता को सुख दरद दर्शायो छयो। वां से जनता मा उभार होये अरद्दम सणी 'गढ़वाली जन-साहित्य परिषद्' की आवश्यकता पड़े, या एक ऐतिहासिक आवश्यकता छई, न कि कुई आकस्मिक घटना। भारतेन्दु वा "घोषणा पत्र वाली परम्परा हमन अपनाई छई। लेकिन टिहरी मा एक मृगतृष्णावाली सरकार बणी और अपनी सफलता पर फूलीक साथियों न अपनी कलम पर भरोसा करण नि छोड़े, ओत अपनी जनता से भी दूर हटी गैन। सच बात या छ कि आज वीं परम्परा मा एक ठहराव आई गये। हमारो पैलो काम यो छ कि वे गतिरोध सणीं तोड़ी देवां। 'गढ़वाली जन साहित्य परिषद्' गढ़वाली बोली मा पुस्तक छापणां को प्रण करीक भी 'मन्दाकिनी' का लेखक सणी सुझाव नी देई सकद कि वो अपनी बोली मा वीं पुस्तक सणी लिखू। यदि मन्दाकिनी गढ़वाली बोली मा निकलदी त वीं कू महत्व और भी बढ़ी जांदू।

हम भला ही अपनी जनता से दूर होई गयां, पर गढ़वाली

संग्रहों को सम्पादन होवो।

(३) पौड़ी तथा टिहरी मा खोज करना वाला कार्यालयों की स्थापना किया जाओ।

(४) जनपदीय नाटक मण्डली का निर्माण की सम्भावना पर हम विचार करां।

सणी बल प्रदान करां; साहित्य और कला की सामग्री जनता का जीवन से जमा करेंद। हमारा गढ़वाल का गीतकार सदा से ही यीं ओर सजग रईन। पैमायश होंद :—

'तुम चींणा मुनारा, पैले पैमाश होली, मेरा मैत्यों का खील।' मोटर की सड़क आंद त वू फिर बोलदन—'पाड़ मा मोटर आई गए, सची फतेपुर बटी,' पं० जवाहरलाल नेहरू का प्रति वूं की भावना छ. 'भारत का नेता होईना, वीर जवाहरलाल जी', चाय का ज्यादा चलन का प्रति व्यंग छ, 'और धांण पुरण छोड़ा, चाय जरूर पीणां जी।'

हमारा गीत बणाण वाला जनता की नाड़ी का प्रति कतना सजग रहंदन ये सब यां का उदाहरण छन। यदि हम सभी गीतों लोककथाओं, पखणा आदि जमा करी सकदा ता हम अपणा इतिहास की एक झांकी, जनता की संस्कृति का रूप मा वां मा मिलदी।

कुछ लोगों की धारणा छ कि गीत को साहित्य त गढ़वाली मा पुष्ट छ पर गढ़वाली गद्य की संभावना कम छ। वूं से, मेरो निवेदन छ कि वू सन् १९१३ की 'विशालकीर्ति' मां छप्यूं 'गढ़वाली ठाट' पढ़न। पण्डित सदानन्द कुकरेती वां का लेखक छया। वां कू एक अन्श करना की प्रेरणा देवू वा ही सही माना मा जनता की संस्कृति छ। हमारा गढ़वाली गीतों मा हमारी जनता का सभी संघर्षों की झलक मिलद। १८५१ का अठूर का किसानो कू निहाड़ का वास्ता लड़ाई लड़नू, १९२१ मा कुली उतार कू संघर्ष, १९३० रंवई मा तिलाड़ी का मैदान वालू मोर्चा आदि सभी लड़ाई, गीतों मा जनता की बहादुरी की धरोहर छन। ज्या जनवादी परम्परा हमारी छ वां की

गढ़वाली भाषा अर वीं को शब्दकोष

[प्रिंसिपल श्रीधरानन्द घिल्डियाल]

गढ़वाल इलाका की भाषा गढ़वाली बुले जान्द।

भारतीय भाषाओं का प्रमुख विद्वान् डा० पियर्सन न ईं भाषा का चार रूप अपणा ग्रन्थ 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया'

मेरी अपणीं धारणा छ कि यो दुनिया का कै भी भाषा का श्रेष्ठ गद्य का टक्कर कू छ। फिर ज्या बोली मां का दूध का साथ हमारा तन संणी पुष्ट बणांद वा सदा हमारा जीवन का समीप रहंद। हम वीं बोली मा अपना विचार आसानी से व्यक्त करी सकदां। इसाई लोगून या बात भली तरां समझी छई और लगभग १८३० ई० का प्रचार का वास्ता न्यू टेस्टामेंट कू अनुवाद गढ़वाली मा छपवाई छयो।

लेकिन एक कान्फरेन्स कैक ही इतना बड़ो काम नी होई सकद। अतएव मेरी अपनी यां का प्रसार का वास्ता योजना छ:—

(१) एक त्रिमासिक पत्रिका 'गढ़वाली जनपद' को प्रकाशन किया जाओ।

(२) गढ़वाली लोकगीतों, लोक कथाओं, पखाणों आदि का संग्रहों को सम्पादन होवो।

(३) पौड़ी तथा टिहरी मा खोज करना वाला कार्यालयों की स्थापना किया जाओ।

(४) जनपदीय नाटक मण्डली का निर्माण की सम्भावना पर हम विचार करां।

सणी बल प्रदान करां; साहित्य और कला की सामग्री जनता का जीवन से जमा करेंद। हमारा गढ़वाल का गीतकार सदा से ही यीं ओर सजग रईन। पैमायश होंद :—

'तुम चौंणा मुनारा, पैले पैमाश होली, मेरा मैत्यों का खील।' मोटर की सड़क आंद त वू फिर बोलदन—'पाड़ मा मोटर आई गए, मची [illegible] जवाहरलाल नेहरू का प्रति वूं की भावना

आज हमारा पास न साधनों की कमी छ और न कार्यकर्ताओं की, सवाल संगठन बणाण को छ। यदि हमारो संगठन मजबूत होलू तथा हम अपना कार्य से सब लोगों मा विश्वास पैदा करी सकला त सारी गढ़वाली जनता कू सहयोग हम तैं प्राप्त होलू।

पैले-पैले मैंन अपनी बोली मा भाषण देणा कू प्रयास करे। यां मा बड़ी त्रुटियां होई सकदन। आशा छ कि आप लोग मैं वां का वास्ता छमा करीला। या भी सम्भव छ कि मेरा दृष्टिकोण से कुछ लोग सहमत नी होवन। यदि वो वां पर प्रकाश डाली सकदन त मैं वूं कू आभारी होलू।

गढ़वाली भाषा अर वीं को शब्दकोष

[प्रिंसिपल श्रीधरानन्द घिल्डियाल]

गढ़वाल इलाका की भाषा गढ़वाली बुले जान्द।

भारतीय भाषाओं का प्रमुख विद्वान् डा० पियर्सन न ईं भाषा का चार रूप अपणा ग्रन्थ 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' मा दिखाईन:—

(१) उत्तर गढ़वाली (२) मध्य गढ़वाली (३) श्रीनगरी (४) निचली गढ़वाली (सलाणी) अर (५) टिहरी गढ़वाली (गङ्गपारी) भाषा शास्त्रियों न हिन्दी भाषा की विभाषा या बोली ईं नैं बताये। या बिचली पहाड़ी का अन्तर्गत मनेजांद। कुमाउनी अर नेपाली आदि ईं की बैण छन।

ईं गढ़वाली भाषा को अपणो महत्त्व छ। या सम्पन्न छ, ईं को शब्द-भण्डार भौत बड़ो छ। ईं को निकास वैदिक संस्कृत अर संस्कृत भाषा का अदला-बदली से होये। ईं को सम्बन्ध सीधो वैदिक भाषा अर संस्कृत भाषा से छ। उदाहरण का बास्ता स्यो, स्या शब्द छन। ये शब्द वेद मा प्रयुक्त छन—ठीक वे ही अर्थ अर वे ही रूप मा ये गढ़वाली भाषा मा भी प्रयुक्त छन। संस्कृत भाषा मा व्याकरण का अनुसार ये 'तद्' शब्द का प्रथम विभक्ति का एकवचन का रूप छन। पर, संस्कृत साहित्य मा ये को प्रयोग ना का बराबर छ। वैदिक भाषा का जणदारों को यो विश्वास छ कि ओ 'स्य' शब्द 'तद्' शब्द से अलग शब्द छ। वेद मा भी ये को दूसरो रूप नी मिलदो। मालूम पड़द यी शब्द मूल रूप मा रई होलो। 'तद्' शब्द को जन्म ये से ही होये। 'मुखे सुख' अर्थात उच्चारण की

आसानी का वास्ता 'य' अक्षर दिये गये। 'त्यद्' अर 'तद्' रूप का 'य' आखर छोड़िक बिलकुल फरक नीं पड़दो।

अच्छो, जो कुछ भी हो, यो निश्चित छ कि गढ़वाली भाषा को 'स्यो' अर 'स्या' वैदिक शब्द छन। ये ही तरों 'द्यो' शब्द भी छ। यो शब्द भी वैदिक भाषा से ही गढ़वाली भाषा मा आये, किलै कि, ये को रूप अर अर्थ वैदिक भाषा का समान छ।

भौत शब्द संस्कृत का तत्सम छन। संस्कृत विभक्तान्त पद ही ईं भाषा न अपणैयाले। संस्कृत का 'किम्' शब्द का करण कारक को एकवचन को रूप छ, वी गढ़वाली मा 'केन' छ। यो शब्द गढ़वाली मा जने को तने छ। जनो कि, "तेरी मति केन बिगड़े," केन छ या उदासी ?

इने 'कति' शब्द भी छ। यो संख्यावाचक शब्द छ, ये को अर्थ छ, कतना या कतगा। ठीक ये ही रूप अर ये ही अर्थ मा ये को प्रयोग गढ़वाली भाषा मा होंद। जन– कति आदमी छन, कति जनानी ऐने ? यख मा एक बात ध्यान देण वाली छ कि, जनो कि संस्कृत भाषा मा पुल्लिंग अर स्त्रीलिंग ये शब्द का रूप मा क्वी अन्तर नी, उने गढ़वाली मा भी नी छ।

सच्ची संस्कृत भाषा सभी भारतीय भाषाओं की ब्वै छ। ऊँ सबू मा संस्कृत भाषा का शब्द भौत संख्या मा मिलदन। ये शब्द ऊँ तैं उत्तराधिकारी का रूप मा मिलेन। गढ़वाली भाषा भी अपणा अधिकार तैं पूरी तरौं रखदी। ऐंच लिख्यां उदाहरणों से यो सब साफ करि दिये गये।

संस्कृत भाषा का 'तद्भव' शब्द भी सभी भारतीय भाषाओं मा मिलदन। गढ़वाली भाषा मा तद्भव शब्दों को प्रयोग होंद।

निस कुछ शब्द ऊं का शुद्ध संस्कृत रूपों का साथ दिए जान्दन।
तुलना करण से यो साफ ह्वे जांद कि गढ़वाली भाषा का शब्द
संस्कृत भाषा का बिल्कुल धोर अर खास सम्बन्धी छन, जबकि और
भाषाओं का शब्द अपणा मूल रूप से दूर जै पड़ीनः—

संस्कृत	गढ़वाली	संस्कृत	गढ़वाली
अनुसार	अंद्वार	पलालि	पराल
		नवनीत	नौणो
अन्यत्र	अगथ	ईंपन	इन्क्‌डो
अधः	उन्दो	म्यान्	सैंत
एकदा	एकदां	सीमा	स्यूं

गढ़वाली भाषा मा कुछ शब्द इना विलक्षणी छन कि जौंका
समानार्थक शब्द भारत की आजकल की भाषाओं म त क्या
संस्कृत भाषा मा भी नी मिलद। यूं शब्दु द्वारा ई सिद्ध होन्द
कि, संस्कृति आदि पुराणी भाषाओं से अलग भी गढ़वाली भाषा
को विकास स्वतन्त्र अर अपणो छ। यूं शब्दों का वास्ता गढ़वाली
भाषा सणि दूसरी भाषों को पीछो नी करनो पड़। यूं शब्दों मा
एक शब्द 'खुद' छ। अपणा प्रियजनों का विछोह मा मनखी का
हृदय मा ऊंकी याद देंदारी बेचैनी को खुद बोलदन। यो शब्द
भौत व्यापक अर्थ मा छ। ब्वे-बुबों तैं अपणा पुत्र की खुद लगद
अर नौन्याल तैं ब्वे-बुबों की खुद लगद, भै तैं भै की. बैण तैं भै
की; भै तैं बैण की, मित्र तैं मित्र की, जनानी तैं पति की अर पति
तैं जनानी की खुद लगद। खुद छोटा-बड़ा सभी तैं लगद। ये मा
अवस्था को क्वी सवाल नी छ; जनानी हो या मर्द. द्वियूं तैं खुद
लगद. ये मा लिंग की बाधा नी छ। जड़-चेतन सभी तैं खुद
लगद, ये मा जड़-चेतन की भी बाधा नी छ। मतलब यो छ कि

खुद एक इनों मानसिक भाव छ, जो भौत व्यापक छ। सम्बन्ध का भेद से ये का रूप मा फर्क पड़द; पर ये का मर्म का शासन मा क्वी फर्क नी पड़दो ये नरों खुद शब्द अपार नियन्त भवसागर त अपणा मा समेटी क बैठ्यूं छ। ये भाव तैं प्रकट करण वालो शब्द और भाषा मा छई नी छ। दूसरी भाषों तैं खुद शब्द को भाव प्रकट करण का वास्ता भौत शब्दों को खर्च करणो पड़लो; तो भी सैद ही ये को भाव साफ ह्वे सको। दूसरा भाषा-भाषियों न ह्वे मा ये जिकुड़ी तैं छूणवाला भाव तैं पैछाणो ही नी छ, समझे ही नी छ। ये वास्ता ऊंकी भाषा मा ये का वास्ता भी दूसरो शब्द ही नी छ। गढ़वाल को नन्हों नौन्याल भी ये शब्द का गम्भीर भाव तैं समझदो छ, वे की मातृ-भाषा को शब्द जो ठहर्यो। त्वे खुद लगीं छ। ये सवाल का जवाब मा गढ़वाल को नौन्याल कण्ठ पर उंगली रखी देन्द, जें को मतलब यो होयो कि पराण बेचैन छन। इतना तीखो छ यो भाव। संस्कृत भाषा को 'उत्कण्ठा' शब्द ये का साथ कुछ बराबरी करद। पर ओ खुद की जगा नि ले सकदो। वे मा इतनी सामर्थ नी जो वो खुद तैं मिटै द्यो।

बात या छ कि, 'उत्कण्ठा' होंदी छ, पर 'खुद' लगदी छ, जै का बारा मा लगदी छ वे का मिलण पर ही छूटद। इनो त 'उत्कण्ठा' भी लगदी छ पर वा बेचैनी वे मा कख, जो खुद मा छ।

भाषा-शास्त्र खुद तैं संस्कृत का क्षुध् (भूख) से बणौण की बात सोचद। पर सची यदि क्षुध् से खुद जन्मे छ, त यो बोलण ही पड़लो कि भाव की नजर से क्षुध् पिछाड़ी रै गए अर खुद भौत अगाड़ि बढ़ गए।

हिन्दी भाषा मा खुद पर्याप्त नी छ, वों तैं चैन्द कि, वा . ना

समर्थ शब्दों तैं अपणावो। इना शब्द तैं अपणोण से हिन्दी भरपूर बणली अर वीं को शब्दकोष बढ़लो और भाषौं मे वा शब्द पैंछि लेन्द, फिर गढ़वाली त वीं की सग्गा बैण, या 'भुली' छ वीं मे पैंछ लेण मा त वीं तैं क्वी संकोच नी होयूं चैन्द।

हां, इन्नी एक शब्द 'भुली' छ, जै को मतलब छोटी बैण होंद। अर भुला शब्द को मतलब छोटो भै। छोटी बैण अर छोटा भै का वास्ता यनरों अलग शब्द सेद ही कै दूसरी भाषा मा होन। भुला अर भुली शब्द एक अपूर्व प्रेम की धार से जिकुड़ी मा मेल पौंछांदन। गढ़वाली हृदै ईं प्रेम की धारा मा हमेशा आनन्द लेंदो रैंद। 'या मेरी छोटी बैण छ' की बजाय 'या मेरी भुली छ' मा भौत सामर्थ छ। बड़ी बैण का वास्ता 'दीदी' शब्द छ। बंगला भाषा मा 'दीदी' छ, ठीक ये ही अर्थ मा। त क्या बंगला गढ़वाली भाषा की दीदी छ? ये नरौं एक शब्द से ही बंगाल अर गढ़वाल भौत नजदीक एगेन। इतिहास का विद्वान यदि खोज करून त भौत कुछ सफल सच्चाई प्रकट ह्वै सकद। बड़ा भैजी का वास्ता 'दिदा' अर 'दादा' शब्द को प्रयोग गढ़वाली भाषा मा भी होंद। बंगला का 'दादी' शब्द को प्रयोग ठीक ये ही अर्थ मा होंद।

गढ़वाल एक भाषा वैज्ञानिक तीर्थ

(लेखक—श्री श्यामचन्द नेगी बी० ए०, जे० डी०)

भाषा कु मनुष्य अर देशू की जिन्दगी मा एक बहुत बड़ो स्थान होंद । अगर क्वी का लोगू का बाबत कुछ जाणन् हो त ऊँ की भाषा यांमा बहुत काम औंदी । भाषा बतलौंदें कि कभी लोग क्या था अर क्या छन ।

क्वी की भाषा कनै बणे यानि वो शब्द कखन आयेन, कख-कख गयेन, क्ख-क्ख मिलदा छन, कना बणेन, वीं का वाक्य कना-कना बणदन, वीं का बुझणा, औखाणा आदि कखन आंदन या कख से मिलदन, यू ई भाषा का जरिया के लोगू सणि जाणन कु एक तरीका छ । यो बड़ो टेढ़ो-मेढ़ो काम छ । कभी-कभी त छोटी बात पर बरसू तक लग जांदन । किलै कि यै अध्ययन का वास्ता और ज्यादा से ज्या भाषाओं को ज्ञान अर अध्ययन बहुत ही जरूरी छ, ताकि भाषाओं को मिलान करीक के भाषा अर लोगू का बारा मा अणजाण बातू को पता लगद ।

यै आधार पर आज हम गढ़वाल का बारा मा जाणन पर विचार करन जै रयां । गढ़वाल अजीब लोगू से बस्यूं छ । ऊँ भन ज्यादा करीक गढ़वाल का बारा मा कुछ भी नि जाणदा, जबकि भैर का लोग गढ़वाल का बारा मा ऊं से काफी जाणदन । यां पर भी बात या छ कि गढ़वालियों मा कतना ही बड़ा-बड़ा आदमी अर विद्वान होई चुकेन तथा होई रयेन । पर गढ़वाल का बारा मा कतई कुछ भी नि जाणदन । त भैर का लोगू न त कखन ही पूरीं-पूरी

नौर मे गढ़वाल का बारा मा जाणन। यो ही कारण छ कि गढ़वालियोंन अफू सणी इतना जायू समझे कि उ भैर अफू नैं गढ़वाली बतौण मा अर गढ़वाली बोलण म शर्मादन। देहरादून जिला मा बसणवाला गढ़वालियों न भाषा अर जात भी कइयों न लुकै दिनि।

पर भाषा विज्ञान का अध्ययन से साफ साबित छ कि गढ़वाल अर गढ़वाली भाषा बहुत ऊँचा छन। गढ़वाल को सैंडा देश मे गैरो सम्बन्ध रये, यो हम भूलग्यां। क्योंकि यख मा गढ़वाली अर हिन्दुस्तान की अन्य भाषाओं से मिलैक देख सकदों।

गढ़वाली अर संस्कृत

भाषा विज्ञान का पंडित मैक्समूलर न अपणी 'साइन्स आफ लैंग्वेज' नामक पुस्तक मा लिखे कि गढ़वाली प्राकृतिक भाषा को एक रूप छ। प्राकृत भाषा वेदों का समय की अपभ्रंस संस्कृत छ। यानि गढ़वाली को संस्कृत भाषा का साथ वेदों का समय से सम्बन्ध छ। आज भी गढ़वाली मा सैकड़ों शब्द छन जोकि वेदों मा अर गढ़वाली मा उन्नं इस्तेमाल होंदन। वैदिक विश्वेश्वरानन्द रिसर्च इन्स्टिट्यूट मा काम करदारा श्री रामप्रसाद भट्ट न इना सैकड़ों शब्द ढूंढ निकालेन। बात भी सही छ, किलै कि वेदों का समय से ऋषि-मुनियों अर बड़ा लोगू का नाम आज भी गढ़वाल का डांडा-डुंकरू, गुफों, नदी-नालों अर देवतों मा मिलदन। 'केदारखण्ड पुराण' से यो साफ साबित होंदो। बात त यख तक छ कि जब संस्कृत बिगड़न लगे त गढ़वाल ही इनी जगह थै कि जख संस्कृत बहुत दिन तक बोलेंदी थै। या बात श्री बालकृष्ण भट्ट शास्त्री न अपणी कनक वंश नामक पुस्तक मा लिखे। अब जरा हम गढ़वाली अर संस्कृत नैं मिलैक देखां।

पहिले नो हमतैं ध्यान रखयूं चैंदा कि गढ़वाली मा 'ष' अर 'श' का उच्चारण मा प्रायः 'स' हो बोलेंदो। मिल्या अक्षर अलग होदन। गढ़वाली मा संस्कृत का क अर ख कति जगौं ग होदन। ट ड अर ढ ड ह्वै जांद। ध त द ह्वै जांद। न त ण ह्वै जांद। प त ब ह्वै जांद। ल त ल ह्वै जांद। व त ब ह्वै जांद। प त ख ह्वै जांद। क्ष त ख ऽस ऽञ ह्वै जांद।

अब हम आसानी से जाण सकदौं कि कितना ही संस्कृति का शब्द गढ़वाली मा बहुत ही कम फरक का साथ मिलदन। जना कि-अलसू (सं० आलस), अटगणू (सं० अटकन), उच्छ्याद (सं० उच्छिद), जंगार (सं० जङ्गाल), जामीर (सं० जंबीर) वगैरा संस्कृत का मिट्ठी शब्द गढ़वाली मा जरासा बिगड्यां मिलदन। जनाकि—अनाड़ी (सं० अनार्य), अखालनू (सं० अवक्षालन), उदूयूं (उद्दीप्त), कालथ (सं० कुलत्थ), छर्द (सं० छिर्द), बराड़ (सं० ब्रड़) परसनु (सं० प्रसर), मौण (सं० मन्या) हिंडोला (सं० हिम्डोल), अखोड़ (सं० अक्षोट), चोपड़ (सं० चोपड), निखिद्द (सं० निषिद्ध), खुरफांसु (सं० खुरपाश), छुदा (सं० क्षुधा), चोखू (सं० चोक्ष)।

संस्कृत का 'व' वर्ण का बाद मा औण पर गढ़वाली मा 'औ' बण जादो। जनोकि —नौ (सं० नव), जौ (सं० जव), संस्कृत की ह गढ़वाली मा स्वर का अगाड़ी हलन्त ह्वै जाद। जनोकि सिहाणू (सं० सिंहण), मो (सं० मोह)। गढ़वाली मा सैकड़ों शब्द संस्कृत का वनी मिलदान। जनोकि— अंङ्गार, कुक्कर, डांङ्गरी, भिल्ल, रेणु, रोपण। गढ़वाली अर संस्कृत का कारकू मा भी बहुत कुछ समानता छ। जनोकि - रमै (सं० रमाये) त्वै (सं० त्वया), एन (सं० एन)।

गढ़वालो मा संस्कृत का कितना ही मुहावरा मिलदन। जना कि —गलगण्ड लग्यूं छ। अर्थात् व्यर्थ भार बण्यूं छ। यो संस्कृत

का 'गलगण्ड' से मिलदो। फकराण लग्यूं, अर्थात् तेजी म इथैं-उथैं जै रये। यो संस्कृत का फर्फराय से मिलदो। नीर को नीर अर छीर कु छीर, अर्थात् सही-सही न्याय। यो संस्कृत का नीर क्षीर न्याय से मिलदो।

गढ़वाली की 'क्रिया छ' (है) की जड़ संस्कृत मा छ। जनो कि व्याकरण का प्रणेता पाणिनी का सूत्र 'पर्वताच्छः' से मालूम पड़दो।

गढ़वाली अर संस्कृत का शब्दों मा आधा से ज्यादा व्याकरण अर मुहावरों मा समानता छ।

गढ़वाली संस्कृत का बहुत नजदीक होण का कारण, गढ़वाल का तीर्थखण्ड होण का कारण, देश मा समय-समय पर ऐतिहासिक घपरोलों की बगत देश का लोगों का कोणों-कोणों से एक जगा बसण का कारण गढ़वाल मा आज हिन्दुस्तान की सभी आर्य भाषा बहुत ज्यादा समाईं छन। यां का कुछ उदाहरण ये छनः-

गढ़वाली अर मराठी

गढ़वाली अर मराठी मा कत्ती एक ही तरह का शब्द मिलदन। जना कि—अगाडी (म० अघाडी), देनारी (म० देणारी), जथका (म० जितका), लमडइ (म० लमडनी)। शब्द रचना मा भी घनिष्टता छ। जनो कि—भरपेट, भरसक, इना सरीखा (म० देणा सारा व.1), एक दां (म० एक वक्त)। गढ़वाली अर मराठी का मुहावरा भी बहुत मिलदन। जनो कि—कुड़ो फोड़नो (गढ़०) घर फोड़नो (म०), कच्चा-बच्चा, गाजा-वाजा, सैजी सैज (म० सहजा सहजी), गाली गडण् (गढ़०) गाल् गाडण् (मराठी)।

गढ़वाली अर राजस्थानी

ये द्वी भाषा भी बहुत ही नजदीक छन। इनरा-इनरी, गत, छकी

कंद, छोरा, ठट्ट द्वीयोंमा समान ही छ। जनान्यो सणी बुलौणक द्वियों मा 'हली' बोलदन। गढ़वाल मा भी राजस्थानी की तरह 'जी' की जगह पर 'ज्यू' बोल्या जांदो थै। जनोकि देव प्रयाग मा रघुनाथ जी का मन्दिर मा माधो सिंह भण्डारी का नोना गजेसिंह का लेख मे साक्षित छ।

द्वीयों मा मिलदा-जुलदा शब्द बी कम नि मिलदान। जनाकि- आछरी (रा० अच्छरी) आँखणो (रा० उग्वाणो), ढागण (रा० ढाकण) ढिंकलो (रा० ढिंगलो), सिरदारन (ग० अर रा०). व्याकरण भी यां को एक ही तरह को छ। जनोकि भविष्य काम का वास्ता क्रिया लकारनि (पु०) अर लीकारनि (स्त्री०) होंदान उबो (ग०) उभो (रा०) बैठो (ग० अर रा०) भूतकाल की क्रिया म भी यों द्वियों म समानता छ। जनोकि गढ़वाली म "छई" (स्त्री०) अर "छा" (पु०) औंदान उन्नो राजस्थानी मा 'छई' ज्यादा करीक इस्तेमाल होंदो।

मुहावरा बी द्वी भाषाओं का भौत कुछ मिलदान। करज उतारनू (ग०), करज उतार (रा०), चार खूंट (ग० अर रा०), पुल-लगाई (ग०), पुल लगा (रा०) यां का उदाहरण छन।

अगर राजस्थानी अर गढ़वाली सणी बरीकी से देख्या जाओ त गढ़वाल का कत्ति मुहावरों पर राजस्थानी की छाप मिलली। जनो कि--गढ़वाली मा "राड़धाड़", राजस्थानी मा "राड़" (लड़े) अर "धाड़" (धावा) सि निकल्यू छ।

इतना ही नी बल्कि जनु कि राजस्थानी 'ल' 'ल़' का उच्चारण मा फरक होण पर शब्दों को मतलब बदल जांदो उन्नी गढ़वाली मा पाया जांदो। जनो कि—

गढ़वाली	राजस्थानी
कुल (सब) अर कुल् (वंश)	कुल अर कुल् (वंश)
खाल अर खाल् (द्वी पहाड़ का मिलन की जगह)	खाल (खड्लो अर खाल (पाणी कु पतनालो)
खोल अर	गाल (गल्वाड़ो) अर गाल् (गाली)
गाल (गल्वाड़ो) अर गाल् (गाली)	चंचल (चपल) अर चंचल (घोड़)
टालु (थेगली) अर टालु	माली (माली) अर माली (रुप्या पैसा सम्बन्धी)
माल अर माल् (मैदान)	

गढ़वाली अर पंजाबी

गढ़वाली अर पंजाबी का शब्द भी आपस मा मिलदन। जना कि—आवाज, आखर, खिस्सा, छन्ना, जूड़ा, रस्सा, पैंटा, इथैं (पं० इथे), उथैं (पं० उथे), कुखड़ी (पं० कुकड़ी), कमौ (पं० कमाऊ); वे (पं० वे, मां), स्याणी (पं० सियाणी) हौर आदि।

व्याकरण की समानता भी गढ़वाली अर पंजाबी मा बहुत कुछ मिलदी। क्रिया विशेषण, वर्तमान अर भूतकाल की क्रिया—उगदो पाणी (पं० बगदा पाणी), जांदा था (पं० जांदे सन) आदि।

मुहावरा भी यूँ का समान छन। जना—अमीर सुभौ (पं० अमीर तबिअत), दिल नि करदो (पं० दिल नहीं करदा), खाद खुराक (पं० अरगढ़), दिवो बालनो (पं० दिवा बालना)।

गढ़वाली अर गुजराती

गढ़वाली अर गुजराती मा भी भाषा की समानता छ। यूँ शब्दों मान मिल्यां अक्षर जादातर अलग-अलग बोलेंदन। जना—मूरत, फरक, पराण, उमर आदि।

गुजराती का कुछ शब्द अक्षरू का थोड़ा सा भेद से गढ़वाली मा बोल्या जांदन जना कि:--बगत (गु० बखत), गगडोट (गु० गगडोत), अंध्यारू (गु० अंधारू), रैवासी (गु० रहेवासी) आदि।

हमारी छः क्रिया बहुत पुराणी छ जी तैं गुजराती से भी बल मिले। किलै कि गढ़वाल को राज वंश गुजराती था। वे जमाना मा ये वंश का लोग छुं अर छुं-छुं आदि प्रयोग करदा होला जो गुजराती का रूप ही छन। संख्यावाचक विशेषण और अन्य पुरुष पुलिंग का विशेषण मा भी समानता मिलदे। जनो कि--पैलू (गु० पहेलु), चौथु (गु० चौथू), पांचु (गु० पांचमु) आदि।

मुहावरों मा भी समानता छ। जनो कि—कार रवाई, राजकरी, यु हुक्म गाड़ी थौ (गु० एहे वो हुकम काहाड़ो देतो), मेरवानी रखिया (गु० मेहरबानी राखि हतो) आदि।

गढ़वाली अर सिन्धी

सिंधी भाषा मा भी समानता छ। जनो कि:—उपाधि (सि. उपद्रयी), आखर, गुस्साते, भतार, तस्मे, पंगत, इन्नी, (सीं. न्ही) उन्नी (सिं. उन्ही) इकलो [सिं. हिकलो), मलूक, मत्थी, मेख, बुग्चो [सि. बुज्गो] तपौणो [सि. तपोउण] थेगली [सि. थेगड़ी], उधा [सि. हुद्दी] दिदाली [सि. दिदाली] आदि।

गढ़वाली अर सिंधी का मुहावरा भी आपस मा मिलदन। पिरतपाल करनो [सि. पिरतपाल करण] खेती खसम सेती (सि. खेती सुसेटी) आदि।

गढ़वाली अर बंगला

गढ़वाली अर बंगला भाषा भी आपस मां मिलदे। जनो कि:-

असुख, ई, ए, यै, इथै, काका, खोणा [लंगड़ा] झोला, दीदी, भिंडि, देरी आदि ।

अक्षरु का थोड़ा सा अन्तर का साथ कतना ही शब्द बंगला से मिलदन जना कि :— यख [बं० यख] वख [बं० ओखाने] हांस [बं० हाँश] तथै [ब तथाय] बाछरु [ब० बाछुर] आदि । गिनतियों मा समानता छ । जनो कि :—द्वि [बं० दुई], ग्यार, तेर, चौद, उणतरीस (बं० उन्नमीस) आदि ।

मुहावरों मा भी समानता मिलदे । जनो कि: - बुक बुक फोडना, घूमऔण, बाडी सग्वाडी आदि समान छन ।

गढ़वाली अर नेपाली

गढ़वाली अर नैपाली भाषा की समानता को कारण गोरख्याणी का समय मा आयां गोर्खा सैनिकों को औणो और बसणो ह्वै सकदो । क्योंकि गढ़वाल मा नैपाल की तरह गावों का साथ कोट शब्द को प्रयोग मिलदो । जनो कि—बड़कोट, मल्याकोट आदि । कोट अर्थ बड़प्पन से छ जो नैपाली मा प्रयुक्त होंद । यां को उदाहरण अठूर पट्टी का पड्यार गांव का माफेदारों की सदन मा 'कोट पड्यारगांव' ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा लिखित छ । यन्नी खाल शब्द भी नेपाल गढ़वाल मा समान छ । भंडार खाल (नैपाल) पौखाल, जहरी खाल (गढ़वाल मां)

शब्द की समानता—आफू, उकलनु, का का, पल्ली, फलाम (नै. लुहो) फटीं, बाट आदि । झणा (नै. जना) तत्तरा [नै. नत्र] मैन (नै. माइत) स्वादो [नै. स्वदों]

व्याकरण की दृष्टि से भी कुछ समनता छ । एक वचन, पुलिंग,

उकारान्त तथा ओकारांत और स्त्रीलिंग की संज्ञा इकारनी होंद। क्रिया भी द्वियों मा छ, छन, थयो [नै. थियो] मिलदेन।

मुहावरों मा भी कुछ समानता छ। जना किः - आंखा दिखाई, गेन कानून, चितवुभे [नै. चित वुभेन] फैला पड़े [नै. फेला परे], बोझ बिसौण [नै० बोझ बिसावणा] आदि।

गढ़वाली भाषा की वैज्ञानिक खेज को विषय कुछ सरल काम निछ। ये संबंध मा मैं अभी और खोज करि रयूं यां को थोड़ा सा दिग् दर्शन मात्र यख मा दिखलाया गये।

इतिहास का विद्वानू को मत छ कि आर्य लोग सबसे पहिले हिमालय का रास्ता से ही गढ़वाल आयेन और बहुत दिन तक गढ़वाल मा रण का बाद मैदानु की ओर बढेन। संभवत: ये लोग तब तक गढ़वाल मा रहे होल, जब तक संस्कृत भाषा प्राकृत भाषा का रूप मा नि बदली।

यां का बद आर्य लोग आज का भिन्न भिन्न प्रान्तों मां बट गये होला। कदाचित् ये ही कारण से गढ़वाल मा आधुनिक सभी आर्य भाषाओं का रूप मिलदन।

गढ़वाली साहित्य की सुरुआत

लेखक—श्री विश्वम्भरदत्त चन्दोला, 'गढ़वाली' के यशस्वी सम्पादक

हर्ष छ कि गढ़वाली भाषा की ओर हमारा कुछ उत्साहित लोगू न ये समय भी ध्यान देणो आरम्भ कर दिने। हमारी गढ़वाली भाषा बोल-चाल, कथा-पँवाड़ा, चिट्ठी-पत्री, गीत, जागरू अर रुवाल्यू तैं ही सीमित रय इनो अब तक देखण मां आई रये। गढ़वाल राज्य मां, अंग्रेजू का आण से पैले तैं, हमारी राज-भाषा अपणी गढ़वाली भाषा छई। तब राज्य सम्बन्धी लिख-पढ़, राजसत्ता अर प्रजा का बीच, गढ़वाली भाषा मां होंदी छई। साहित्य की भाषा हमारी संस्कृत छई। हमारा अपणा राज्य का समय का तामा पत्र भी संस्कृत भाषा मा लिख्यां मिलदन।

हमारा ग्राम्य गीतू, कथौं, पँवाड़ों अर पखाणों मां गढ़वाल देश वासियों की संस्कृति, गढ़वाल को इतिहास अर गढ़वाली भाषा को साहित्य भर्यू छ। यूं चीजू को संग्रह करनो आवश्यक छ। ईं दिशा मां "गढ़वाल यूनियन" नाम की सभा न अपणा जन्मकाल सन् १६०१ से कुछ ध्यान देण की सोची छई; अर सन् १६०५ से 'गढ़वाली' पत्र द्वारा यां को प्रचार अर सूक्ष्म रूप मां विस्तार भी होंदो रयो। कुछ पंवाड़ा अर गीतू को संग्रह तब आरम्भ होयो। पर लगन का कार्यकर्तों, धन का अभाव अर कुछ हमारा स्वभाव की अन्य कमजोरियों का कारण यो कार्य संगठित रूप से नी चल सक्यो; अर अब पचास वर्ष बीत जाण पर भी उचित रूप से नी चल सकणू छ।

हमारी गढ़वाली भाषा मां शिक्षाप्रद, वीर रस से भर्यां,

रूलांदारा, कारुणिक अर हंसदारा अर मधुर रसीला गीतू को बड़ो भण्डार छ। डांडी-कांठ्यूं, गाड-गदन्यूं अर भेल-पाखों से यूं की ध्वनि समय-समय पर प्रसारित होंदी रंद। हमारा येई पुराणा मौखिक साहित्य को संग्रह वे का वे पुराणा रूप मा ही, जै मां वो हजारू वर्षं से चली रय, होणों चैंद। वेका संग्रहकाल मां वेमां काट-छांट करनी ठीक नी छ। शब्द, गीतू, कथौं अर पँवाड़ों को सग्रह नगरू से दूर-दूर डांडी-कांठ्यूं, गाड-गदन्यूं का धोरा अर भेल-पाखों मां बस्यां गांऊँ का नर-नारियों से अर नगरू मां अर ऊँका धोरा का गांऊँ मां बस्यां लोगू से सुणी-सुणी क करेव। यूं को अपणा पुराणा रूप मां सग्रह ह्वे जाण का उपरान्त ऊँका यथार्थ भाव का अनुसार वो सजीधजी सकेंदन।

सन १८६०-८० का धोरा का कुछ गढ़वाली भाषा का प्रेमियों न रचनात्मक कार्य आरम्भ करी छयो। ऊंको वो कार्य प्रशंसनीय छयो। वांकी बानगी स्वर्गीय पं० गोविन्द प्रसाद जी घिल्डियाल [रायबहादुर, डिप्टीकलक्टर अर गढ़वाल का पहिला बी० ए०] न 'गढ़वाली' पत्र मां सन १९०६ मा दिखाई छई। ऊं गढ़वाली भाषा प्रेमियों मा जौंका नौं नव प्रकाश मां आईने ये यछा। [१] पं० हरिकृष्ण जी दौर्गादत्ती रूडोला [२] पं० लीलानन्द जी कोटनाला [३] श्री हर्षपुरी जी। ये तिन्ने देशप्रेमी श्री नगर निवासी छया।

पं० हरीकृष्ण दौर्गादत्ती जी की 'चेतावनी' नाम की रचया का द्वी पद पहिलो अर अंतिम. ये छन।

"अलो भायूं! क्या छ? कख नईं पड़्यूं सेंण घर मां?"

× × ×

"न खोवा हे छुच्चौं, निज दिन अमोल मुफत मां"

'शिक्षा' नाम की रचना का पहिला और अंतिम पद ये छन :

"भुला मेरा सुण दौं चुच्चा नी खिचरेणू यइ तरौं,"

× × ×

"नि पेणी या घुटकी कन कन बिगड गैने पिइक।"

पं० लीलानन्द जी कोटनाला की 'लाट रिपन' नाम की रचनाओं का कुछ पद ये छनः –

× × ×

"जनि जनि बांधी तुमन भली भली जथा,
तनि तुभरी गाइ जांद जख तख कथा।
भारत निवासी मांज स्वाशासन चर्चा,
पूरी जब कैल्यो साऽब तब होली अर्चा।
इलबर्ट बिल मांज पड्यूं छ झमेल,
इनि जुक्ति गाडी साऽब जान होवा मेल।
भारतवर्ष की ओर पंगु छ समाज,
तेरा हाथ दुखियों की आइ पडे लाज।"

या रचना वे समय की छ जैबारे भारतियों की मांग छई कि इङ्गलैण्ड आदि देशू का गोरा अभियुक्तू का मुकदमों को विचार करन को अधिकार भारतीय हाकिमू सणी भी दिया जावों। यां से गोरा बौखलाई गया, पर लाट रिपन ये भेदभाव सणी मिटाणो चांद। छया और वो अपणी ईं बात पर दृढ़ रया। ऊँकी कौंसिल का न्याय मन्त्री सी० पी० इलबर्ट न ये सम्बन्ध को एक बिल कौंसिल मां पेश कर दिन्यो पर वो पास नी होई सक्यो। लाट रिपन न इस्तीफा दी दिन्यों। डिस्ट्रिक्ट अर सिटी बोर्डू द्वारा स्वशासन

अधिकार दिलाण को कार्य भी यूंका समय मां होयो अर शिक्षा विभाग तथा हिन्दी प्रेस ऐक्ट मां कुछ सुधार भी। वे समय की इनी हल-चल को लहर भारत की राजधानी कलकत्ता से हमारा गढ़वाल का केन्द्र-स्थान श्रीनगर तक भी पौंछी अर तब हमारा मान्य महानुभाव न लाट रिपन कू श्रद्धाञ्जलि देण कू उक्त भाव प्रकट कर्या। लाट रिपन को समय सन् १८८१-८४ छयो।

श्री लीलानन्द जी न 'गढ़वाली छन्द माला' सन् १६१८ मां प्रकाशित करी छई। वां मां गढ़वाली भाषा मां छन्द बणाण की रीति छई। वीं छोटी सी पुस्तक को आरम्भ ऊन ये प्रकार से करे।

"बई जैकी उमा देवी बाप जी छन शंकर,
सुसो बोकण वालो छ को रक्षा गणेश वो।"

ऊन लिखे कि मंत्र शास्त्र मां 'व' अमृत बीज कू द्योतक। 'ई' प्राप्ति का अर्थ कू प्रकट करद अर्थात् जैंते अमृत दुग्ध की प्राप्ति होंद या 'बई' माता छ। बाप बर धातु से छ। जन्मदाता 'वं' 'आप' होया 'बई बाप'।

वूंन गढ़वाली भाषा मां 'गढ़गीता' 'लीला प्रेमसागर 'गढ़वाली प्रस्तावावली' पुस्तक भी लिखी छई। पर ऊंका स्वर्गवासी होण का उपरान्त वो सब लिख्यूं तितर बितर होई गय। पं० सनातनानन्द जी सकल्याणी को लेख छ कि ये भारतेन्दू श्री हरिश्चन्द्र जी का साहित्य सहयोगी अर 'कविवचन सुधा' आदि पत्रू का आदि गढ़वाली लेखक छया।

श्री हर्षपुरी जी की 'राजनीति' नाम की रचना का कुछ पद ये छन।

"राजाउं कु राज काज जनु बगवानी साज
फूलु का बगीचा मांज बाड बांधी चाहेंद।

नानाऊं की गौर वद दुलउं मौलाइ देंद
छांटि छुंटि चुंगी लेंद घसोप उखाडेंद ।

यूं की 'बुरो संग' नाम की रचना का कुछ पद ये छन :--

अकुलौं मा माया करी कैकी बी पार नी तरी
वार विथा सिर धरी अकुवि कू रोयेंद ।
मैन बोदू भली वात सोच कदु दिन रात
मूरखू का संग साथ ज्यान जम्बूं पायेंद ।
आंखू देखी सुणी जाणी चटोरों मा मायालाणी
जगत की गाले खाणी विचारियुं स्वाहेंद ।

स्वर्गीय पं० सनातनानन्द जी सकल्याणी को एक लेख ये प्रकार छ :--"श्री हर्षपुरी जी अर श्री ध्यानन्दपुरी जी पिता पुत्र छया । यूं दुयं गढ़वाली भाषा प्रेमियों का इतना अधिक छंद बणायां छन कि जो यो छपाया जावन त कत्ती बड़ा ग्रंथ होई सकदन । गढ़वाली साहित्य मां यूं को एक अलग ही संप्रदाय अर यूं की रचना को एक निरालो ही पर्व मान्यू चैंद । जनो यो साहित्य वणी छयो गढ़वाल का दुर्भाग्य मे ततो वे को प्रचार नी होयो । अजों भी की वै पर्व को उद्धार करदारो निकललो यां की आशा कुछ नीछ । किलैकि परमार्थ का और कामू की भांति साहित्य को काम भी बड़ो औखो अर बिना इनाम इकराम को होंद । ये पर्व पर संस्कृत अर ब्रज भाषा का साहित्य को दबदबो पाया जांद । एक हिसाब मे बोल सकेंद कि ये साहित्य की आत्मा संस्कृत सरीर गढ़वाली अर रंग ढंग ब्रज भाषा को छ । ये पर्व को प्रायः सब साहित्य संस्कृत को अनुवाद छ । छंद भी संस्कृत का छन । बोली गढ़वाली त छ पर संस्कृत शब्दू की भरमार छ । बाजा छंदू की बोली बसक ठेट गढवाली छ ।" (६ अप्रैल सन् १६५२ ई०) ।

यूं उक्त देश अर भाषा प्रेमियों की रचनाओं मां सामाजिक शिक्षा अर राजनैतिक भाव व्यक्त छन। यूं लोगू की लिखीं बड़ी सामग्री छई। यदि अब भी कुछ खोज करी सकें त संभव छ कुछ हाथ लग जाव। पं० लीलानन्द जी कोटनाला न एक समय लिखी छयो कि समय आण पर ऊंकी लिखीं सामग्री प्रकाशित होली। 'छपली' से अभिप्राय छयो पर घटनाचक्र मे वा सामग्री प्रकाशित नी होई सकी। ऊंका स्वर्गवासी होण का पिछाड़ मैन श्री कमलेश्वर जी का वर्तमान महन्त श्री कमलानन्द जी पुरी कू लिखी छयो कि वो श्री कोटनाला जी की लिखीं सामग्री को कुछ पता लगाण की कृपा करन। ऊन उत्तर दिने कि "श्री कोटनाला जी की लिखी सामग्री ऊंका उत्तराधिकारियों की ओर से उचित देखभाल नि होण से तितर बितर होई गये।" श्री हर्षपुरी जी श्री कोटनाला जी अर श्री देवानन्दजी पुरी की लिखीं सामग्री की खोज श्री कमलेश्वर जी का महन्त जी करदा त गढ़वाली भाषा को उपकार होंदो। खोज करन पर मंदिर कमलेश्वर का पुस्तकालय और पुराणा कागज-पत्र मा कुछ मिल जाण की सम्भावना छ। कुछ लोगू का मुखजबानी भी यूं लोगू की कुछ रचना याद होली। श्री हरिकृष्ण जी दौर्गादत्ती की कुछ न कुछ रचना ऊंका परिवार का लोगू का पास सुरक्षित होली।

श्री हर्षपुरी जी, श्री लीलानन्द जी कोटनाला अर श्री हरिकृष्ण दौर्गादित्ती जी वे समय का समाचार पत्र मां भी लिखदा छया। यूं का लेख अर लिखणो देश अर समाज सेवा की भावना से होंदो छयो। कलकत्ता से प्रकाशित होण वाला वै समय का समाचार पत्र मां अर 'अल्मोड़ा अखबार' मां यू का लेख निकलदा छया। 'कविवचन सुधा' अर भारत मित्र मां भी यूं का लेख छपदा छया। ये हमारा यख का समाचार-पत्र लेखकू मां पहिला लेखक छया।

यूं से पैले का लोगू की भी गढ़वाली भाषा मां लिखीं कुछ सामग्री संभव छ मिल सको पर लगन की खोज अर घूमण फिरन की आवश्यकता छ। हमारा पैले का लोगू की संस्कृत मां लिखीं बड़ी सामग्री पड़ीं छ। कुछ प्रकाश मां आई गय, कुछ कखी कखी पिटारों पर ही बन्द छ, अर सड़न-गलन लगीं छ; अर कुछ बरबाद होई चुके। ईं ओर ध्यान देण की आवश्यकता छ।

सन १९०१ से ईं ओर गढ़वाली भाषा की रचनाओं सणी जन समाज मां फैलन और बढ़ण को नयो उत्साह अर अधिक साधन मिल्यो। 'गढ़वाली' का पहिला अंक सन १९०५ मां पं० सत्यशरण जी रतूड़ी की 'उठा गढ़वालीयों' नौं की, देश-प्रेम का रस से भरी कविता, जांको नौं वास्तव मां "जातिय गान" छयो, प्रकाशित होई, और तब सन १९०६ मां वीस से अधिक रचना हमारा देश अर भाषा प्रेमी कवियों की प्रकाशित होई। तबारे गढ़वाली भाषा की रचनाओं को एक तारतम्य सी बंधी गयो। पं० आतमाराम जी गैरोला, पं० सुरदत्त जी सकल्याणी पं० शशिशेखरानन्द जी सकल्याणी, पं० सनातनानन्द जी सकल्याणी, पं० चन्द्रमोहन जी रतूड़ी, पं० देवेन्द्रदत्त जी रतूड़ी, पं० भवानीदत्त जी थपल्याल आदि की एक से एक सुन्दर अर शिक्षाप्रद रचना प्रकाशित होई। पं० आतमाराम जी गैरोला की रचनाओं मा पदलालित्य, शिक्षा, वास्तविकता, अर मिठास भरी छ। वे समय की सन १९२९ तक की 'गढ़वाली' मां प्रकाशित कविताओं को संग्रह 'गढ़वाली कविता-वली' नाम की पोथी मां छप्यूं छ। यूं रचनाओं मां सामाजिक शिक्षा देश प्रेम अर राजनैतिक भाव व्यक्त छन।

गढ़वाली भाषा मां लिखीं कविताओं का छपण को आरम्भ सन् १९०२ से होयो। पं० गिरिजादत्त जी नैथाणी न पं०

चन्द्रमोहन जी रतूड़ी से ऊंकी बणाईं 'विरह बसन्त विलाप' रचना मांगी अर वा 'गढ़वाल समाचार' मां प्रकाशित करी। तैबारे की पं० चन्द्रमोहन जी की एक रचना 'सैला की स्वार'' नौं की और छई। गढ़वाल समाचार' मां पैले वा छपी छई या 'विरह वसन्त विलाप' ठीक सी याद नी छ। 'विरह वसन्त विलाप' से पं० चन्द्रमोहन जी का मन की ववारे की स्थिति की झलक को कुछ पता लगद। यांका पिछाड़ और तब से सन् १६२६ तक केवल 'गढ़वाली' मां ही ६०-७० से अधिक रचना प्रकाशित होईन। कुछ ''विशाल कीर्ति'' मां भी प्रकाशित होई छई। कई लोगू की रुचि गढ़वाली भाषा मां लिखण अर वांका सम्बन्ध मां अधिक ज्ञान प्राप्त करन की ओर ये समय मां होई।

तब का कुछ उत्साही विद्वानू को ध्यान गढ़वाली भाषा का कोष की रचना करन की ओर भी गई छयो। श्री जगनचन्द्र जी रमोला टिहरी निवासी न 'कीर्ति कोष' का नौं से कुछ शब्दों को संग्रह भी करयाली छयो। ऊंका संग्रह कर्यां अ पाटी का कुछ शब्द 'गढ़वाली' का भाग ३ अंक ४, सन् १६०७ अगस्त, का पृष्ठ २२ पर छप्या छन। पं० गुणानन्द जी डोंडियाल न भी ई ओर उद्योग करी छयो। ऊन तब लिखो छयो कि ऊन दस हजार शब्द से कुछ अधिक को सग्रह करयालि अर शब्दार्थ लिखण को काम चलीरय। ई बात सणी ४७ वर्ष बीत्या अर अब न श्री जगनचन्द्र जी ईं संसार मां रया अर न श्री गुणानन्द जी। यूं लोगू की जोड़ी वा सामग्री कुछ रईं बची छ याना ऊंका उत्तराधिकारीयों से पूछण पर पता लग सकद।

हाल मां 'गढ़वाली प्रचारक मंडल' इन्दौर सिटी (सी० आई०) न एक 'बृहत गढ़वाली नागरी कोष' प्रकाशित करन को प्रयत्न करी छयो। यांका शब्दू को संग्रह पं० तुलाराम जी शर्मा 'चन्द्र' न करीतो

अर सम्पादन कविरत्न सूफी भोलादत्त शर्मा शास्त्री न । यो कोष समर्पित छयो हमारा आदरणीय पं० तुलाराम जी जोशी (कार्य निवृत हेड मास्टर) पोखड़ा गढ़वाल निवासी अब देहरादूण सणी । ये कोष की अ-आ पाटी को पहिलो अंक सन् १९३७ नवम्बर मां प्रकाशित होई छयो ।

यां का पिछाड़ि सन् १९४२ मां 'गढ़वाली साहित्य परिषद्' लाहौर न भी 'गढ़वाली शब्द भण्डार' नाम से एक कोष प्रकाशित करनो आरम्भ करी छयो । ऊँ की पाटी का नमूना को एक अंक प्रकाशित होई छयो । वे अंक का पिछाड़ि क्या होय कुछ पता नी लग्यो । 'गढ़वाली शब्द गवेषणा समिति' मां पं० श्रीधरानन्द जी घिल्डियाल व्याकरणाचार्य, पं० शिवप्रसाद जी घिल्डियाल शास्त्री अर प्रोफेसर बलदेव प्रसाद जी नौटियाल एम०ए० (संयोजक) छयां । यो कोष सुन्दर ढंग से बणनू छयो । ये कोष की भूमिका मां लिख्यूं छयो कि लाहौर का ओरियण्टल कौलेज का प्रोफेसर डा० बनारसी दास जी जैन न एक समय सुणाई छयो कि प्रसिद्ध भाषा-विज्ञान प्रो० टरनर न इङ्गलैण्ड से यख का चीफ्स कौलेज मां अपणा साला कू लिखी छयो कि वो यो पूछ ताछ करन कि कई जीवित भाषा मां 'काखड' शब्द मिलद या ना । चीफ्स कौलेज से या पूछ-ताछ ओरियंटल कौलेज मां आई । प्रिन्सिपल ए० सी० वुलनर न डाक्टर जैन से पूछ-ताछ करी । ओरियंटल कौलेज मां गढ़वाली छात्र पढ़दा ही छया । ऊँ छात्रू मदे एक न बतायो कि 'काखड़' मृग विशेष का अर्थ मां गढ़वाली भाषा मां एक प्रचलित शब्द छ । ये प्रकार 'काखड़' शब्द न एक नामी भाषा-विज्ञान की समस्या हल करी ।

हमारा आदरणीय पं० हरिराम जी धस्मणा ऋग्वेद की रिचाओं सणी आदि गढ़वालियों की अपणी आदि भाषा मां रचीं बतांदन ।

वो रिचा ऊंको विचार छ कि हमारा चौंफला अर गीत छन। ऊंको वर्तमान गढ़वाली भाषा का अर ऋगवेद की भाषा का शब्द् को एक संग्रह कर्यूं छ। वेका देखण से समझेंद कि वर्तमान गढ़वाली भाषा का शब्द् की ऋगवेद मां भरमार छ। श्री धस्मणा जी आर्यों को आदि स्थान गढ़वाल तैं मान दन। यूंका ये सम्बन्ध मां अपणा विचार लिख्यां छन। वांका कुछ टुकड़ा पांच-सात वर्ष होइन 'सरस्वती' मां भी निकलो छया। श्री धस्मणा जी की वा पुस्तक छप जांदी त गढ़वालियों का काम की चीज होंदी।

हमारा ये समय का मान्य अर पथदर्शक कवियों, जना श्री आत्माराम जी गैरोला, श्री सत्यशरण जी रतूड़ी, श्री चन्द्रमोहन जी रतूड़ी, श्री सुरदत्त जी सकल्याणी, श्री सनातनानन्द जी सकल्याणी आदि का थोड़ा ही समय का हेर-फेर मां ईं संसार से विदा ह्वे जाण से हमारा साहित्य कू बड़ो धक्का लगे। गति धीमी पड़ी, उत्साह, सुंदराई, गंभीरता अर धीरज ढीला होया। पर तब भी इना कठिन समय मां कुछ साहसी अर धीरजवाला लोग अपणा य साहित्यिक काम पर चिपक्यां रया। हमारा आदरणीय पं० तारादत्त जी गैरोला न 'फोकलोर आफ गढ़वाल' नौंकी पोथी को मसालो संग्रह कर्यो। या पोथी-अंग्रेजी मां छ पर वामां जो कथा-वार्ता छन वो सब गढ़वाल का पुराणा इतिहास अर सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन से संबन्ध रखदन। यदि वा पोथी पैले गढ़वाली भाषा मां लिखेंदी अर तब अंग्रेजी आदि भाषाओं मां वांको अनुवाद होंदो त वां से गढ़वाली भाषा तैं अगाड़े बढ़ण मां बड़ी सहायता मिलदी। यद्यपि विद्यार्थी जीवन से ही ऊंको गढ़वाल की इनी कथा वार्तों को संग्रह करन को विचार छयो पर ऊंकी ईं इच्छा की पूर्ति करन मां हमारा वे समय का गढ़वाली भाषा का कवियों की कवित्व शक्ति

अर लोगू की गढ़वाली भाषा-प्रेम की चाह न ऊंको उत्साह अधिक बढ़ाये।

हमारा मान्य पं० शालिग्राम जी वैष्णव समय को सुन्दर उपयोग करदारा और परिश्रमो पुरुष छया। ऊंन गढ़वाली भाषा का नया युग सन १६०५-१० का धोरा से ही गढ़वाली पख्याणो को संग्रह करनो आरम्भ कर दिनी छयो। सन् १६१८ का धोरा ऊंको वो संग्रह तैयार होई गई छयो। ई पोथी को नौं छ 'गढ़वाली पख्याणा' अर्थात् गढ़वाली भाषा की लोकोक्तियों को संग्रह। वही यांका संग्रहकर्ता अर सम्पादक छया। पूज्य वैष्णव जी लिखदन कि ये संग्रह सणी प्रकाशित करन को श्रेय विद्यावारिधि डाक्टर पीताम्बरदत्त जी बड़थ्वाल सणी छ।' सम्वत् १६६५ वि० (सन् १६३८) मां यो प्रकाशित होयो। ये संग्रह का अपणा वक्तव्य मां श्री वैष्णव जी लिखदन कि "लोकोक्तियों से भाषा को गौरव ज्ञान होंद, अर्थात् जैं भाषा मां जतना अधिक लोकोक्ती पाया जांदन वा भाषा उतना ही सुसंगठित अर समुन्नत माने जांद। गढ़वाली भाषा ये प्रकार की उच्चकोटि की भाषाओं मां छ। वां मां लोकोक्तियों को इतना बाहुल्य छ कि ऊं सब सणी एकत्रित करनो असाध्य नी छ, त दुःसाध्य अवश्य छ। ये संग्रह मां गढ़वाली भाषा की कुछेक लोकोक्तियों का संग्रह संकलित किया गये। ये संग्रह को उद्देश्य केवल इतना ही नी छ कि यां से लोकोक्तियों को प्रचार बढो बल्कि यो भी छ कि यां से गढ़वाली भाषा पर अधिक प्रकार पड़ो अर वो पाठक जो गढ़वाली भाषा से अनभिज्ञ छन यां को समुचित ज्ञान प्राप्त कर सकन, अर यो ज्ञान होव कि गढ़वाली भाषा को हिन्दी अर संस्कृत से कतना साम्य अर निकट सम्बन्ध छ। यांका शब्द क्रिया अर वाक्य कई प्रकार का व्याकरण का नियमों से आबद्ध छन। जो अन्वेषणपूर्वक ई भाषा को व्याकरण तयार

किया जाव त संदेह नी कि गढ़वाली भाषा अन्य भाषाओं का समकक्ष हम जोलियों का समान ग्वड़ी ह्वेक परस्पर शब्दू को आदान-प्रदान करन लग।" 'गढ़वाली पखाणा' की प्रस्तावना मां डाक्टर पीताम्बर दत्त जी बड़थ्वाल लिखदन कि "गढ़वाली भाषा अबाध गति से बदली रय। परिवर्तन की इन्नी इन गति रई त एक दिन इनो आलो जब कांचो भर गढ़वाली रै जालो। अतएव गढ़वाली की ही रक्षा की दृष्टि से ना बलिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी यो आवश्यक छ, कि गढ़वाली को शुद्ध रूप क्या छयो अर क्या छ यां सणी जाणण को कुछ साधन भी मिलो। यद्यपि भाषा सदा परिवर्तनशील छ, तोभी बहुत प्राचीन काल से चली आण का कारण पखाणो (कहावतों) पर बहुधा पुराणोपन भी चिपक्यूं चली आंद। श्री वैष्णव जी न गढ़वाल का जे भाग मां जो पखाणो सुणो वो वे भाग की बोली मां बिना हेर-फेर का अपणा संग्रह मां रख दिने। यां से गढ़वाली भषा का भेद् सणी समझण मां भी सहायता मिल सकद।"

गढ़वाली भाषा का पुस्तक-भंडार मां हमारा पूज्य श्री शालिग्राम जी वैष्णव की या 'गढ़वाली पखाण' नौकी पोथी एक प्रतिष्ठित स्थान पाली।

गढ़वाली भाषा मां छपीं पोथी जो मैंन सब से पैले देखी छई वीं को नौं छयो बाइबल। अमेरिका की एक धर्म प्रचारक संस्था न वा प्रकाशित करी छई। तीन-चार सौ या कुछ कम अथवा अधिक पृष्ठू की वा सुन्दर सजीली अर जिल्दबन्दी पोथी छई। गढ़वाली भाषा मां पहिली पोथी छपवाण की अगल्यार अमरिका की संस्था कू मिले। हम सणी वीं संस्था को कृतज्ञ होयूं चैंद। या पुस्तक मैंन सन १९१२ का धोरा देखी छई। तब हमारा आदरणीय पं०

गोविन्द प्रसाद जी घिलड्याल न संस्कृत का 'हितोपदेश' को अनुवाद गढ़वाली भाषा मां छपवाये। एक गढ़वाली द्वारा प्रकाशित गढ़वाळी भाषा मां या पहिली पोथी छ अर हमारी भाषा की छपीं पोथ्यों मां दूसरी। या पोथी सन् १९०० का धोरा छपी होली। तब पं० गिरिजादत्त जी नैथाणी न 'मांगल संग्रह' नाम की एक छोटी सी पोथी, पर काम की चीज, सन् १९०८ का धोरा छपवाई होली। पं० भवानीदत्त जी थपल्याल, खैड़, मवालस्यूं निवासी न 'जय-विजय' नाटक प्रकाशित कर्यो। और भी कत्ते छोटी छोटी गित्तू की पोथी ये बीच प्रकाशित होई। पं० तारादत्त जी गैरोला की 'सदेई' छपी। "गढ़वाली कवितावली" प्रकाशित होई।

गढ़वाली भाषा मां कविता प्रकाशित करन को प्रवाह सन् १९२९-३० मे कुछ घटायूं सी दिखेंद। १९३५ से १९४० तक कुछ भाषा प्रेमियों न अपणी-अपणी छोटी-छोटी रचना पोथियों का रूप मा छपवाइने। जो देखण मां आईने ऊंकी संख्या दस-बारह तक होली। कुछ गढ़वाली भाषा प्रेमियों न, जौं मा श्री भगवतीप्रसाद जी पांथरी, आचार्य श्री गोपेश्वर जी कोठियाल, श्री दामोदरप्रसाद जी थपल्याल शास्त्री आदि छन, गढ़वाली जन साहित्य परिषद् की स्थापना करीक अर वांका द्वारा कुछ छोटा-छोटा नाटकू की छोटी-छोटी पोथी प्रकाशित करीने। यूं मद्धे कुछ नाटक खेल्या भी गैने। श्री दामोदरप्रसाद जी थपल्याल शास्त्री नाटकू मां खेलदा भी छन। सुन्दर खिलाड़ी अर उत्साही कार्यकर्ता छन।

अपणी भाषा का प्रकाशन सणी बढ़ाण अर सुधारन कू विद्वान् को मेलजोल अर विचारू को विनिमय, धनियों की सहायता, जनता को भाषा प्रेम अर कार्यकर्तौं की अडिग लगन और धेय केवल मात्र अपणी भाषा सणी सजाणो, बढाणो अर सुन्दर रूप देणों को होयू,

चैंद् । भाषा का नौं से दल विशेष का मत का प्रकार की या कैकी निन्द्या की बात करनी अनुचित छ ।

गढ़वाली भाषा मा हमारो एक छोटो सी साहित्य-भण्डार होई सकद् । सामग्री की हमारा यख कमी नी छ । पुराणी सामग्री बिखरीं पड़ीं छ । वांको संग्रह अर सुधार होई सको त हिन्दी अर अन्य भाषौं सणी भी हम कुछ नयी अर सुन्दर चीज दे सकदा । हमारा अनुभवी अर उच्च श्रेणी का कलाकार वेका सुधार, शृंगार और यथायोग्य स्थान मां रखण मां सहायक होला ।

गढ़वाली भाषा की रूपरेखा

[ले०—श्री चक्रधर बहुगुणा शास्त्री, एम० ए० एम० ओ० एल०]

भाषा को विषय बड़ो मनोरञ्जक और रहस्य पूर्ण छ। यां को इतिहास भी उतना ही पुराणो छ जतना पुराणी मनुष्य जाति को छ। जनो जनो मनुष्य की शक्तियों को, परिस्थितियों को, संस्कृति व समाज को विकास व परिवर्तन होंदो जांद तन्ने ही भाषा की गतिविधियां भी अदल-बदल होंदी रहंद। मनुष्य का मानस या प्राण की चहल-पहल का साथ भाषा मां भी चहल-पहल नजर औंद। परिस्थिति की गम्भीरता का कारण भाषा भी बड़ी गम्भीर होई जांद। नाटक खेलदी वक्त जो भाषा इस्तेमाल होंद व सुणन मां अच्छी लगद वह भाषा लड़ाई का मैदान मां कभी उपयोगी नी होई सकदी। रणस्थल की भाषा दैनिक जीवन मां उपयोगी नी बणी सकदी। ये कारण भाषा का भिन्न-भिन्न रूप होई जांदन। ये वक्त मेरो मतलब वीं भाषा से छ जो हमारा जीवन स्रोत का बहाव का साथ हमारी अंतःवृत्तियों सणी प्रकट करन का वास्ता प्रयोग मां औंद और समाज का साहित्यिक का रूप मां परिणित होईक भावी मनुष्य जाति का वास्ता मसालकोसी काम देंदी रहंद। चाहे वह पुस्तक का आकार मां आई जाव या कथोलौं का ही रूप मां चलदी रहो। गढ़वाली भाषा का बारा मां मैन एक वक्त १६२८ मां 'गढ़वाली' पत्रिका मां एक मन्तव्य बनाई छयो और वख मां भाषा को असल मां गढ़वाली

का बारा मां विचार करदी वक्त हम सणी गढ़वाली याने नीति-माणा से लीक बेड़ ठेट कोटद्वार, ऋषिकेश और उथैं जुब्बल बुशैर से लीक कुमाऊं तक फैल्यां सारा मुल्क की बोलियों पर विचार करनो चाहेंद। गढ़वाली साहित्य की त वक्त-वक्त की चर्चा चलदी रहंद। परन्तु भाषा का बारा मां चर्चा कम होंद। गढ़वाली भाषा को कब कनो रूप वणिगे, कब वीं को ढर्रा कनो बदल गये, कब वीं मां कनो-कनो मेल-जोल होई गये। ये सब बात विचारण की छन। यूं पर ही हम सणी भाषा विकास का नाता या भाषा व्युत्पत्तिवाद नी नजर से तर्क-वितर्क करनो छ।

मैन १९३७ मां गढ़वाली भाषा मां अपणी फुटकर कविताओं को एक संग्रह 'मोछंग' नाम से प्रकाशित करी छयो। वीं किताब की भूमिका मां मैन लिखो छयो कि "यदि हम हिन्दी भाषा, जोकि अब राष्ट्र भाषा ह्वैगे, सणी पूरी तौर पर संमुन्नत बणौणो चांहवांत हम सणी मुल्क की भाषाओं को निरादर नी कर्यूं चाहेंदो। किलै कि राष्ट्र भाषा की श्रीवृद्धि का वास्ता तथा हिन्दी साहित्य की वढ़ौनरी का वास्ता प्रान्त व मुल्क की भाषाओं पर भारी भार छ। जब तक हमन प्रान्तू की भाषाओं को आदर करनो नी सीख्यो तब तक हमारी हिन्दी भाषा को कोष व साहित्य कभी भी भरपूर नी होई सकदो।"

यां का अलावा मेरी त यह भी धारण छ कि यदि हम गढ़वाली सभ्यता व संस्कृति को पूरो ब्योरावार ज्ञान करनो चाहवांत, हम सणी गढ़वाल का खौलू या स्तरू मां छिपीं मानव-संस्कृति की कुछ चुनी बातू पर विशेष तौर पर गौर करनो होलो। विशेष बातू से मतलब यो छ कि गढ़वाल का (पुराणा वैदिक समय से अब तक जो-जो सभ्यता व शिष्टाचार भारतवर्ष मां फैलीने व जौं-जौं बातून

भारत का मानव समाज मां उथल-पुथल मचाये, ऊँ मध्ये (कुछ खास-खास, जनो—गढ़वाल का देवी-देवता, नाच, गीत, तीं-त्यौहार आदि—बानू पर सामाजिक विचारधारा व विकास की क्रांति का नजर से देखणो पड़लो और ऊँको पूरो-पूरो विवेचन करनो पड़लो। तब ही हम भाषा विकास की जड़ पकड़ी सकला, और के निश्चय पर आई सकला।

आप सणी ईं बात कू जाणीक भारी अचम्भा होलो कि गढ़वाल एक इनी जगह छ जख का वातावरण मां भारत की पुराणी से पुराणी सभ्यता व आदर्शू की छाप ज्यों को त्यों मिलद। समय-समय पर जो-जो हेर-फेर समाज मा होईने वे की भी सही और सच्ची झलक गढ़वाल का खोलू-खोलू मां आज भी जगमगांदो नजर औंद। देवी-देवताओं को ही किस्सा लेई ल्यावा। गढ़वाल मां बालण, हूण, नगेलो, रमोलो, भैरों, तारा, घंड्याल आदि देवता आज भी पूजेंदान। यूं का पिछाड़े एक लम्बो इतिहास छ। यां से इतिहास का वास्ता एक ठोस सामग्री मिलद और यह भी पता चलद कि विदेशी लोगू को कब और कनो प्रभाव हमारा समाज मां पड़े।

इबारे मैं सिरफ द्वी-एक बात भाषा का बारा मां ही आप सणी बतौंलो। पुराणा जमाना से आज तक जौं-जौं लोगू का साथ गढ़वाल को मेल-जोल होये, ऊँकी यादगार की निशानी सी गढ़वाल मां भाषा का रूप मां मिली जांदान। इतना ही नी छ, बल्कि बाहर की भाषाओं की जो खिचड़ी गढ़वाली मां मिलद वीं से भाषा का इतिहास का वास्ता भी बहुत मसालो यख मिली जांद।

वेदू का समय का सम्बोधन का शब्द—अये! हे हो! अंहो! आदि (ऊं ईं! होई! वीही! का रूप मा) ठेटमध्ये 'पाणी इलाणी

सरीखा गांऊं मां आज भी मिल जांदान'। 'दिशा' शब्द औजी लोग आज भी धियाण या लड़की का वास्ता बोलदान। जनों मैं दिशा का गांव मांगण कू जाणू छऊं। 'द्यौ' आसमान का वास्ता सारा गढ़वाल मां प्रयोग मां औंद, जनो द्यो नि बरखदो। द्यो उंदो बजर पड़े। ईं तरह उपनिषद् काल या पुराणकाल का शब्द आज भी काफी गढ़वाली मां मिलदान।

भाषा विज्ञान की नजर से भाषाओं पर जो-जो प्रभाव समय समय पर पड़दा या होंदा रहंदान वां को भी खुलासा पूरी तौर पर गढ़वाली मां मिली जांद। यख तक पश्चिमी देशू की बोलियों व भाषाओं मां जो-जो अन्तर आये वां को भी थोड़ा बहुत आभास या झलक गढ़वाली मां मिली जांद। ये फरक औण का कुछ एक कारण मेरी समझ से ये छन :—

१ बद्री केदार की यात्रा का वास्ता देशावरू का लोगूं को औणो।

२ गढ़वाली सिपाहियों को देशू विदेशू मां रहणो।

३ देवप्रयाग, बद्री केदार का पंडों को देशू मां घूमणो फिरनो।

४ हाकिमू का हुकम या फरमान।

५ व्यापारियों को देशावरू से व खासकर नीती माणा आदि घाटियों से हुणिया मारछा, तोल्छया आदि को व्यापार का वास्ता गढ़वाल मां औणो।

६ भजेड़ की अपणी रक्षा की खातिर देशविदेशू से लड़ाई या हलबा-गलबा की वक्त गढ़वाल मां छिपणाकू औणो।

आप लोगून यदि कभी ध्यान देई होवो त आप सणी मालूम पड़े होलो कि गढ़वाली मां—गोरू बाछरू, गोठ, गंवार छोरा, छापर, तसालो, श्री खंड, वाटी, कितली, लालटेन, नौन्याल, मिजाज

वगैरह शब्द गुजराती, मराठी, बंगाली, मारवाड़ी, दक्षिणी, अंग्रेजी व उर्दू का छन। इन्ने पुराणी संस्कृत, पाली, प्राकृत, मागधी वगैरह भाषाओं का शब्द भी सही या तोड्यां-मरोड्यां आज भी

हम बोलचाल मां अकसर बोलदां—कनो हरगण गाये। ये मुहावरा पर यदि आप विचार करला त गढ़वाल की संस्कृति को तकमीना भी तुम लगाई सकला। 'अहर्गण' ही गढ़वाली मां 'हरगण' बणीगे। "याने कना दिन ऐने।" यो मतलब होयो। गढ़वाली का दिशा, उकरान्त (उत्क्रान्त), बिनसिरी (बिना श्री), अलाविलाप (अलभ्य लाभ आदि शब्दू को कनै, कब गढ़वाली मां घुसणो होये। यह भी विचारण की बात छ। ईं तरह गढ़वाली मां कुछ इना शब्द छन जौं की बराबरी का शब्द कखी मिलदा ही नी छन। जना—खुद, धुरपोली, खंखल्यौ, खंद्वार वगैरह। उन्ने 'भुस-मुस' शब्द छ, वे की भी एक अपणीं अलग दुनिया छ।

यूं कारणू से मेरी आप से प्रार्थना छ कि ईं प्रकार का शब्दू की छाणबीण करीक ऊं सणी हिन्दी साहित्य का कोष मां लौण को उत्तरदायित्व सब गढ़वाली बोलणवाला विद्वानू को छ। गढ़वाली शब्दशास्त्र का पण्डितू सणी व साहित्यकारू सणी ईं बात पर खास करीक ध्यान देयूं चाहेंद। जनो पुराणा जमाना मां यूनान का शब्द पण्डितू न याने सुकरात (४६६-३६६ ई० पू०), प्लेटो (४२६-३४७ ई० पू०) अर अरस्तू (३८४-३२२ ई० पू०) आदि न भाषा की छान-बीन करे या आजकल का विद्वान करना छन, तैं ही प्रकार हम सणी भी गढ़वाली भाषा की छानबीन करीं चाहेंद। आज त हमारा पास साइन्स का बहुत सा साधन भी छन। ईं तरफ थोड़ा सा कदम मेरा मित्र श्री बलदेव प्रसाद नौटियाल एम० ए०, साहित्यरत्न, रिसर्च स्कॉलर (लाहौर वालों) न पिछला (१६४२ ई०) सालू उठाई

को यखमू जरा जिकर करनो ठीक समझदौं। आप वख पर गौर करून। आप देखला कि भाषा का उच्चारण, लेहजा तथा शैली मां कतना जबरदस्त फरक छ। जनो :—

सारा गढ़वाल मा प्रयाग मा औंद, जनो घो नि चरखदो। घो उंदो बजर पड़े। ई तरह उपनिषद् काल या पुराणकाल का शब्द आज भी काफी गढ़वाली मां मिलदान।

भाषा विज्ञान की नजर से भाषाओं पर जो-जो प्रभाव समय समय पर पड़दा या होंदा रहंदान वां को भी खुलासा पूरी तौर पर गढ़वाली मां मिली जांद। यख तक पश्चिमी देशू की बोलियां व भाषाओं मा जो-जो अन्तर आये वां को भी थोड़ा बहुत आभाष या झलक गढ़वाली मां मिली जांद। ये फरक औण का कुछ एक कारण मेरी समझ से ये छन :—

१ बदरी केदार की यात्रा का वास्ता देशावरू का लोगूं को औणो।

२ गढ़वाली सिपाहियों को देशू विदेशू मां रहणो।

३ देवप्रयाग, बदरी केदार का पंडों को देशू मां घूमणो फिरनो।

४ हाकिमू का हुकम या फरमान।

५ व्यापारियों को देशावरू से व खासकर नीती माणा आदि घाटियां से हुणिया मारछा, तोल्छ्या आदि को व्यापार का वास्ता गढ़वाल मां औणो।

६ भजेड़ की अपणी रक्षा की खातिर देशविदेशू से लड़ाई या हलत्रा-गलत्रा की वक्त गढ़वाल मां छिपणकू औणो।

आप लोगून यदि कभी ध्यान देई होवो त आप सणी मालूम पड़े होलो कि गढ़वाली मां—गोरू बाछरू, गोठ, गंवार छोरा, छापर, तसालो, श्री खंड, वाटी, कितली, लालटेन, नौन्याल, मिजाज

अगर हम शब्द व्युत्पत्ति शास्त्र का तरीका पर गढ़वाली भाषा की छानबीन करां त हम तैं वख मां बहुत सी बात इनी मिलली जो भाषा विज्ञान व साहित्य मां अपणो एक खास स्थान रखली। जनो हम बोलचाल मां अकसर बोलदां—कनो हरगण गाये। ये मुहावरा पर यदि आप विचार करला त गढ़वाल की संस्कृति को तकमीना भी तुम लगाई सकला। 'अहर्गण' ही गढ़वाली मां 'हरगण' बणीगे। "याने कना दिन ऐने।" यो मतलब होयो। गढ़वाली का दिशा, उकरान्त (उत्क्रान्त), बिनसिरी (बिना श्री), अलाबिलाप (अलभ्य लाभ आदि शब्दू को कनै, कब गढ़वाली मां घुसणो होये। यह भी विचारण की बात छ। ईं तरह गढ़वाली मां कुछ इना शब्द छन जौं की बराबरी का शब्द कखी मिलदा ही नी छन। जना—खुद, धुरपोली, खंखल्यौ, खंद्वार वगैरह। उन्ने 'भुस-मुस' शब्द छ, वे की भी एक अपणीं अलग दुनिया छ।

यूं कारणू से मेरी आप से प्रार्थना छ कि ईं प्रकार का शब्दू की छाणबीण करीक ऊं सणी हिन्दी साहित्य का कोष मां लौण को उत्तरदायित्व सब गढ़वाली बोलणवाला विद्वानू को छ। गढ़वाली शब्दशास्त्र का पण्डितू सणी व साहित्यकारू सणी ईं बात पर खास करीक ध्यान देयूं चाहेंद। जनो पुराणा जमाना मां यूनान का शब्द पण्डितू न याने सुकरात (४६६-३६६ ई० पू०), प्लेटो (४२६-३४७ ई० पू०) अर अरस्तू (३८५-३२२ ई० पू०) आदि न भाषा की छान-बीन करे या आजकल का विद्वान करना छन, तैं ही प्रकार हम सणी भी गढ़वाली भाषा की छानबीन करीं चाहेंद। आज त हमारा पास साइन्स का बहुत सा साधन भी छन। ईं तरफ थोड़ा सा कदम मेरा मित्र श्री बलदेव प्रसाद नौटियाल एम० ए०, साहित्यरत्न, रिसर्च स्कॉलर (लाहौर वालौं) न पिछला (१६४२ ई०) सालू उठाई

छयो। परन्तु ऊं सणी गढ़वाली भाइयों की तरफ से पर्याप्त सहयोग या सहायता ये काम मां नी मिले और ऊँ को एक काम भी पूरो नी होई सक्यो। खैर, अब भी समय छ। अब भी काम होई सकद, सिरफ लगन की जरूरत छ। ईं तरह का प्रयत्न करण से हमारी गढ़वाली भाषा एक राष्ट्र भाषा का बिलकूल नजदीक होई सकली और यथा सम्भव वीं सणी सम्पन्न बणाई सकली।

अन्त मां मेरी पाठकू से प्रार्थना छ कि आप लोग भारत की स्वतन्त्रता की श्रीवृद्धि का वास्ता भारतीय विकास से सम्बन्ध रखण वाला साहित्य, भाषा, संस्कृति का सब पहलुओं की उन्नति करण की कोशिश करला और समाज व देश का स्तर सणी ऊपर उठाण का वास्ता सदा तय्यार रहला।